अशोक का चिन्तन

भारत का भारत से, बैर-युद्ध सदा रहा।
दासता-जंजीर में, कारण यही, जकड़ा रहा॥

बरमेश्वर पाण्डेय चन्द्रात्रेय

पुस्तक परिचय

प्रस्तुत खण्डकाव्य पाँच क्रमानुसार सर्गों में बँटा हुआ है—कली, प्रसून, पराग, सुरभि, निर्वाण। लेखक ने कलिंग विजयोपरान्त अशोक के जीवन में हुए अभूतपूर्व परिवर्तन को काव्य-बद्ध शैली में प्रस्तुत किया है। कलिंग युद्ध की समाप्ति पर अशोक का स्वयं युद्ध स्थल और नरसंहार के दृश्यों का दर्शन, उसके हृदय में अहिंसा एवं करुणा की भावनाओं की जागृति, तथा गंगा-दर्शन का वर्णन है। द्वितीय सर्ग में गंगा से प्रेरणा-प्राप्ति एवं रा[illegible] सर्वांगीण विकास के दृढ़ संकल्प का वर्णन [illegible] बौध-धर्म में सम्मिलित होने का विचार [illegible] गया है। तृतीय सर्ग में बौध-धर्म का प्रचार, [illegible] के कार्यों में पूर्ण[illegible] [illegible] जीवन का नवोन्मेष [illegible] तथा [illegible] दर्शन [illegible] प्रस्तुत [illegible] चतुर्थ सर्ग में [illegible] मनोहारी चित्र प्रस्तुत [illegible]। पंचम सर्ग में अशोक [illegible] अन्तिम दुखद जीवन का चित्र[illegible] है। [illegible] के मृत्यु का यथार्थ [illegible] लेखक [illegible] विचार एवं नारी [illegible] का [illegible]। [illegible] में अशोक का [illegible] लेखक [illegible] जीवन से [illegible] है। [illegible] में लेखक को अपने [illegible] जीवन में [illegible] प्रेरणा मिली है। [illegible] उसकी [illegible] की मृत्यु ने पूरा कर [illegible] लेखक ने [illegible] जीवन में ही [illegible] की प्रस्तुत [illegible] स्थान किया है।

यथा :—

[illegible] शांति, दया के अचंचल पं[illegible]।
और [illegible] पर ही कुठाराघात [illegible]

अशोक का चिन्तन

माँ के प्रति

प्रभु–भक्ति में डूबी माँ ! तुझको सहस्त्र प्रणाम है ।
तुझ सदृश माँ से धरा, लगती यथा सुरधाम है ।।
जननो–आशीष से क्यों, हो न पूरी कामना ?
मातृ-चरणों पे समर्पित, है हृदय की भावना ।।
तुच्छ बुद्धि पे आधारित, नृप-चिन्दन की कथा ।
लिख रहा हूँ आसुओं पे, दर्द से आहत व्यथा ।।
नृप–व्यथा संग दर्द मेरा, हो विलोड़ित खिल रहा ।
मनहुँ जीव ब्रह्म संग विकल हर्षित मिल रहा ।।

बरमेश्वर पाण्ड्य् चन्द्रात्रेय

स्वर्गीया रामरत्ती देवी की
पुण्य स्मृति में



अशोक का चिन्तन



अशोक का चिन्तन

(खण्ड-काव्य)

परमेश्वर पाण्डेय चन्द्रात्रेय

उपासना प्रकाशन

दिल्ली · वाराणसी

प्रकाशक : उपासना प्रकाशन
165 डी
कमला नगर
दिल्ली-110007

B-36/10, दुर्गाकुण्ड
वाराणसी-221005
(उ० प्र०)

मूल्य : 25.00

प्रथम संस्करण-1982

मुद्रक : अरुण कम्पोजिंग एजेन्सी, डी-102, न्यू सीलमपुर, द्वारा विन्ध्यवासिनी पैकेजिंग डी-108 न्यू सीलमपुर दिल्ली-110053

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अतीत साक्षी है—प्राचीन काल के सभी राजाओं ने राज्य-विस्तार को लक्ष्य बनाकर, प्रजाहित को अनदेखा कर, अपने शौर्य-प्रदर्शन और विलासी जीवन को महत्व दिया। किन्तु अशोक ही एक ऐसा राजा था जिसने अपने जीवन का सर्वांगीण विकास किया-नैतिक विकास, सामाजिक विकास, राजनैतिक विकास, आर्थिक विकास और धार्मिक विकास आदि। यदि अन्य राजा गगन-तल:पर टूटते उल्काएँ हैं, तो अशोक उसी तल का देदीप्यमान अटल ध्रुवतारा है।

मौर्यवंशीय चन्द्रगुप्त के द्वारा पराजित सेल्युकस निकेटर ने मौर्यवंश के लिए एक राजकुमारी उपहार स्वरूप दिया था। इसी ग्रीक-राजकुमारी के गर्भ से बिन्दुसार का जन्म हुआ। बिन्दुसार की कई रानियाँ थीं, उनमें से कुछ ग्रीक देश से भी सम्बन्ध रखती थी। कुछ ग्रीक-ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर अशोक को भी ग्रीक राजकुमारी से उत्पन्न मानते हैं। सिलोन के श्रोतानुसार अशोक की माता का नाम धर्मा था तथा दिव्यावदान के अनुसार जनपदकल्याणी। किन्तु अशोकावदान तथा वंसत्थापकासिनी के आधार पर अशोक चम्पा की ब्राह्मण कुमारी सुभद्रांगी से पैदा हुआ माना जाता है अथवा चंपक प्रदेश की राजकुमारी शर्मा से। कहा जाता है कि सुभद्रांगी राजमहल से बाहर उपेक्षिता पड़ी रही, तभी उसके गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र के जन्म के समय उसने कहा – "मैं शोक विहीन हो गई।" और इसी कारण उस पुत्र का नाम उसने अशोक रखा। एक और उससे पुत्र उत्पन्न हुआ और पुनः उसने कहा - "शोक टल गया", और इस पर उसने द्वितीय पुत्र का नाम रखा वीतशोक अथवा विगत शोक।

वही बिन्दुसार का पुत्र तथा चन्द्रगुप्त का पौत्र अशोक ने बड़ा होकर अपनी वीरता, योग्यता एवं कुशलता से अपने पिता का मन मोह लिया। अशोक के भाई-बहन भी बहुत संख्या में रहे होंगे; किन्तु चार भाइयों का नाम ही मिलता है—सुसीम, अशोक, महिन्द और तिष्य। ये चारों भाई

लगभग समान उम्र के थे और उनकी शिक्षा-दीक्षा भी समान ही हुई। बिन्दुसार की मृत्यु २७३ ई० पू० और अशोक का राज्यभिषेक ई० पू० २६९ में हुआ।

महावंश के अनुसार अशोक की योग्यता एवं वीरता से प्रभावित होकर राजा ने उसे उज्जैन का वाइसराय बनाया। कुछ दन्तकथाओं के अनुसार उस नवयुवक अशोक की कुरुपता के कारण उसका पिता उससे घृणा करता था, किन्तु अन्त में उसके गुणों से वह बहुत प्रभावित हुआ। अशोकसूत्र और कुणालसूत्र के अनुसार उसे सर्व प्रथम गंधार का वाइसराय बनाया गया, तत्पश्चात उत्तरपक्ष (तक्षशिला) का और तदुपरान्त उज्जैन का। अशोकावदान के अनुसार बिन्दुसार के समय में ही अशोक को तक्षशिला का विद्रोह दबाने के लिए भेजा गया था। वहाँ से फिर विद्रोह दबाने के लिए वह उज्जैन गया और वहाँ का वाइसराय बना दिया गया। उसी समय विदिशा में शाक्यवंशीय वैश्य घराने में उत्पन्न एक सुन्दरी जिसे विदिशा कुमारी, शाक्य कुमारी, शाक्यानी, देवी आदि शब्दों से संबोधित करते हैं, से प्रेमसम्बन्ध हुआ जिससे दो संतान हुई—महेन्द्र और संघमित्रा। वैश्य घराने में उत्पन्न होने और अवैध सम्बन्ध के कारण उसे रनिवास में स्थान नहीं मिल सका। विदिशा उस समय बौद्धधर्म का केन्द्र था और देवी पवित्र बौद्धधर्म में अटूट विश्वास रखती थी, अतः उसे विदिशा में ही अपने जीवन का अधिकांश समय बिताना पड़ा।

तत्पश्चात असन्धिमित्रा अशोक की प्रथम विश्वास पात्र रानी बनी किन्तु उसकी कोई सन्तान न थी। अशोक की मृत्यु से चार वर्ष पूर्व ही वह स्वर्ग सिधार गई। अतः तिष्यरक्षिता द्वितीय रानी के रूप में अशोक के जीवन में आई। इलाहाबाद के शिलालेख के अनुसार इसने अपना नाम बदल कर कारुवाकी रखा था। अशोक को इसका व्यवहार बिल्कुल पसन्द न था। तिष्यरक्षिता बौद्धधर्म से ईर्ष्या करती थी। अतः इसने बोधिवृक्ष को नुकसान पहुँचाया; जिससे राजा बहुत रुष्ट थे। इसके अतिरिक्त कुणाल की आँखों से आसक्त होकर उसने, कुणाल की मातृ-सम्बन्ध के कारण अस्वीकृति पर, आँखें निकलवाने का आदेश दिया था और आँखें निकलवा ली थी। इस घटना के कारण भी राजा बहुत दुःखित थे और उसे जलाकर मारने का आदेश दिया था।

दिव्यावदान के अनुसार अशोक की तीसरी रानी पद्मावती थी जिस का एक पुत्र कुणाल (धर्मविवर्धन) और एक पुत्री चारुमती थी जिसका विवाह क्षत्रिय कुमार देवपाल से हुआ था। राजतरंगिणी के अनुसार जलौघ की माता का नाम अज्ञात है। कुणाल के पुत्र थे - सम्प्रति और दशरथ।

तिब्बती लेखकों के अनुसार नाग अशोक से रत्न और जवाहिरात छीनते जा रहे थे। अशोक ने अपने गुणों से उन पर विजय प्राप्त कर सारे रत्न व जवाहिरात वापस लिया था। ये नाग कलिंग के प्रतीक थे। इस प्रकार अशोक ने २६०ई०पू० कलिंग पर आक्रमण किया। कलिंग पर विजय राज्य-विस्तार हेतु उसके जीवन का प्रथम लक्ष्य था। किन्तु छोटा राज्य होते हुए भी अशोक को लोहे का चना चबाना पड़ा था। विजय उपलब्धि के समय अशोक ने स्वयं कहा था "इस युद्ध में 1, 0,000 व्यक्ति बन्दी बनाए गए और 1,00,000 व्यक्ति मौत के घाट उतारे गये। भूख, रोग और बेघरबारी से मरने वाले व्यक्तियों की संख्या का तो अनुमान ही नहीं लगाया जा सकता।"

काव्य का विषय

प्रस्तुत काव्य में कथा-सूत्र में पिरोये गये विचार तथा नृपचिन्तन की प्रधानता है। कथा का विशेष महत्व नहीं दिया गया है। वास्तव में रचनात्मक विश्व में अशोक द्वारा किये गए रचनात्मक कार्यों एवं जन-हितकारी विचारों के मन्थन पर बल दिया गया है। प्रथम सर्ग में कलिंग रक्तपात के बाद अशोक के जीवन-वृत्त पर अहिंसा व दया का रंग लिए एक कली बनती है। टूटे हुए हृदय के साथ गंगा के किनारे जाकर प्रेरणा प्राप्त होती है; जिससे हृदयकली विकसित होकर धर्म-प्रसून के रूप में मुस्कानें लगती है। वास्तव में अशोक का गंगा के तट पर जाना ऐतिहासिक प्रमाणानुसार सत्य नहीं, किन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि ब्राह्मणी माँ के संस्कारों के प्रभाव से तथा दिव्यावदान में लिखित सूर्यग्रहण पर गंगा-दर्शन के कारण अथवा फैजीव, सिदर्शकी, के अनुसार ४ मई २४९ ई. पू., १५ जून २४२ ई.पू. तथा १९ नवम्बर २३२ ई. पू. सूर्य-ग्रहण के अवसर पर गंगा में नौका विहार से गंगा के प्रति अशोक का विशेष लगाव था। अतः द्वितीय सर्ग में मैंने अपने विचारों की अभिव्यक्ति हेतु अशोक को गंगा के तट पर ले जाकर खड़ा किया है। तृतीय सर्ग में, अशोक ने अपना जीवन धम्मयात्रा और राज्योत्थान तथा प्रजाहित के कार्यों में बिताया। चतुर्थ-सर्ग में भी अशोक ने धम्म यात्रा और प्रजाहित पर बल दिया। तृतीय व चतुर्थ सर्ग में प्रकृति का सजीव चित्रण मनोहारी हैं। पंचम सर्ग में, अशोक के जीवनकाल की दुखद घटनाओं का वर्णन है। अन्तिम समय में कुक्कुटरमा के मठ निमित सारा खजाना दानकर, इतना असहाय हो गया कि एक भिक्षुक को देने के लिए उसके पास आम का आधा भाग ही शेष रह गया था। मृत्यु का यथार्थ चित्रण है तथा कतिपय दार्शनिक विचार भी प्रस्तुत किए गये हैं।

अनुक्रम



अशोक का चिन्तन

प्रथम सर्ग

कली

जय भारती ! जय शक्ति दुर्गे ! बस यही वरदान दो।
पंथ भूला है मनुज, सद्भावना, सद्ज्ञान दो ॥
वैर भावों को भुला, हिल मिल सभी रहने लगे।
क्रोध पर पाकर विजय, कटु वचन भी सहने लगे ॥
न्याय, स्वरक्षा हेतु, युद्ध करना धर्म है।
शक्ति की शोभा रक्षा, कर का सुधर्म है ॥
इस तरह मानव, जीने की कला में दक्ष होगा।
नील नभ झुककर धरा पे, मनुज के समक्ष होगा ॥
एक ही सुकर्म से, कुकर्मों की हार होती।
डूबती नौका एक, सुकर्वत से ही पार होती ॥
दुष्कर्मों में मनुज-अज्ञानता आधार होती।
अज्ञानता के वश में, आत्मीयता निःसार होती ॥
इन्द्रियनिग्रह के बिना, देह-देही भार है।
धर्म के दश लक्षणों से, मनुज का उद्धार है ॥
धर्म से जब भी मनुज, विचलित हुआ संसार में।
अश्रु व ठोकर मनुज को, मिल सका उपहार में ॥
तभी मानवता सिसककर, कब्र में रोने लगी।
हाय ! मानव जगत को, निःसार कह सोने लगी ॥
दैव पर करके भरोसा, कर्म न आधार होता।
इस तरह विकसित न [illegible] संसार होता।

जगत में जीवन में तब तक अरे ! कुछ सार है।
जब तक मानव-हृदय में, अतुलित परस्पर प्यार है ॥
प्रतीति हेतु अतीत के गौरव, हमारे साख होंगे।
समराग्नि में जलकर पड़े, रण-क्षेत्र में जो राख होंगे ॥
आपसी द्वेष, ईर्ष्या फूट कारण दास था।
और भारत का इसी कारण, पतन व नाश था।
यह भारत सत्य भारत, तब तक कभी न हो सकेगा।
जब तक परस्पर भेद तज, श्रद्धा न मन में बो सकेगा ॥
वीरता में अग्रणी, भारत रहा है और रहेगा।
देश-प्रेम की कथा, इतिहास चिल्लाकर कहेगा ॥
कौन है जिसने न पाया, ज्ञान भारतवर्ष से ?
पा लिया सुगन्धि, संस्कृति-सुमन से अति हर्ष से ॥
अतीत अपनी फूट स्वार्थ, और अहं के वश रहा।
अतः भारत सदा दुर्दिन, दुर्दशा में फंस रहा ॥
कारण व परिणाम का, विपरीत कब सम्बन्ध होगा ?
यह मानव पाप-कारागार में, जब बन्द होगा।
अशोक का चिन्तन, मानव-धर्म का आधार है।
अशोक का जीवन, चिन्तन, ज्ञान-पारावार है ॥
कलिंग के समराग्नि में जल, क्रोध यदि न राख होता।
अशोक का साम्राज्यवादी, शासकों पे धाक होता ॥
किन्तु यदि विस्तारवाद, युद्ध का कारण न होता।
कलिंग बनकर लहू पिपासित, कलिंग उर पे रण न होता ॥
जिह्वा पसारे रक्त पिपासु, रण-चण्डी-नर्तन न होता।
सम्भवतः अशोक का थों द्रुत, हृदय-परिवर्तन न होता ॥
कलिंग विजयोपरान्त, बौद्धिक भावना जागृत हुई।
ज्यों धुनकी-घात से, जागृत होती है रुई ॥
न्याय व अधिकार हेतु, लड़ना हमारा कर्म है।
शठ संग शठता का व्यवहार मानव-धर्म है ॥

किन्तु जिस समर से, मानवता का अहित होता।
युद्ध में पाकर विजय श्री, गर्वित हृदय निन्दित होता ॥
जब तक इस विश्व में नर, नर से नारायण न होगा।
तब तक सुगन्धमय पुष्पित, फलित रामायण न होगा ॥
मोहमय निज स्वार्थ पर, आधारित मानव की कथा।
मोल लेने को उत्तेजित, रहेगी वसुधा-व्यथा ॥
छल-कपट-परिपूर्ण राजनीति में मानव छला।
समराग्नि में नर-बलि-स्वाहा कर सदैव स्वयं जला ॥
मलपूर्ण पतनारे में मल-कीट पलता सर्वदा।
संत-कीट सुरसरि-साम्राज्य में जीवित सदा ॥
स्वयं को पहचान, जब मानव सफल सुजान होगा।
उसी दिन यथार्थ सात्विक, सृष्टि में विहान होगा ॥
नर ही नर को नहीं पहिचानता, फिर क्या करें ?
नर पशु में भिन्नता, फिर किस तरह हम कर सकें ?
सुरधाम सम वसुधा, नरक समान क्यों दिखती ? अहो !
अशोक सम शासक जगत में, दिखता है कब ? कहो !
जब तक समस्यायें न, सेवा-भाव से द्रुत हल होंगी।
मानवीय इस धरा पे, अतिशीघ्र ही हलचल होगी ॥
तब कलिंग सदृश नाशक, युद्ध वसुधा पे चलेगा।
गिन-गिनकर कुकृत का, निन्दित कुफल मिलता रहेगा ॥
दानवीय दुष्कर्म पर जब, सृष्टि आधारित होगी।
अशान्ति, हिंसा-भावना, जग में प्रसारित होगी ॥
जब राष्ट्र-शासकों के, मन-नयन में स्वार्थ होगा।
कलिंग ही क्या ? इस धरा पे, जमे महाभारत होगा ॥
और विनाशोपरान्त उनकी, प्यास बुझकर तृप्त होगी।
सुधरा पे मनुजता की भावना, जल रिक्त होगी ॥

जब जघन्यापराधोपरान्त भी, यदि मानव न बदला।
तब पापासक्त दुखमय, असाध्य जीवन में पला ॥
रक्त सींचित हो धरा पे, जब झलकती लालिमा।
मिट नहीं सकती कदापि, इस धरा की कालिमा ॥
और पापों का समक्ष, विशद् पारावार होगा।
मानवों पर पुनः निश्चय, दनुज का अधिकार होगा ॥
निज कर्म के दुर्दोष से, मानव प्रलय में रत होगा।
और दुष्प्रकृति दुष्परिणाम से, वह हत होगा ॥
कुकर्मों का चक्र यदि, सचमुच यहाँ चलता रहेगा।
विनाशकारी चित्तानल में, विश्व वह जलता रहेगा ॥

मनुज हित निमित्त प्रभु, नर रूप धरते हैं कहीं।
दैव शक्ति संचारकर ही, वीर मरते हैं नहीं ॥
अशोक का चिन्तन अपूर्व, जानना अनिवार्य है।
कुछ जानना, पथ ग्रहण कर, चलना मानव-कार्य है ॥
परस्पर विचार-प्रसार से, सद्ज्ञान प्रोद्भूत होता।
ज्ञान-प्रसारण निमित्त, पवमान प्रेषित दूत होता ॥
धृष्टता उत्तम पुरुष की, प्रेरणा का मर्म है।
स्वच्छन्द मिल विचार विनिमय, परम मानव-धर्म है ॥
इस तरह मम लेखनी, अशोक-चिन्तन पर गई।
विचार-विनिमय निमित्त मैंने, लिख दी गाथा नई ॥
गाथा कम व्यथा अधिक, अशोक-चिन्तन-सार है।
और कुछ सद्ज्ञान का भी, पथ-प्रशस्त उद्गार है ॥
प्रारम्भ है चिन्तन-वाणी, मूक जो कहती सुनो।
निष्पन्द त्याज्य हो, रुचिकर विचारों को चुनो ॥
हे पाठक ! वाचक ! श्रोता ! भारती के भक्त हो।
ज्ञान, शील, दया, शान्ति में सदा अनुरक्त हो ॥
आओ, तनिक सोचें विचारें, क्या थे, क्या हो गये ?
क्यों हमारे मध्य से, सब ज्ञान वैभव खो गये ?

अशोक-चिन्तन पुनः भूत, भविष्य का संगम होगा ।
और कुछ अज्ञानता का, बोझ धुलकर कम होगा ॥
पुरखों के चरण-चिन्ह से, मनुज विचलित हुआ ।
विगत वर्चस्व त्यागकर, विगुण हो विगलित हुआ ॥
रहा कलिंग दुर्जेय, विजय अन्तिम अभिलाषा ।
थी अशोक के जीवन में, एक जीवित आशा ॥
हो कलिंग पर विजय, मेरा होगा पूरा प्रण ।
कारण यही, कलिंग वक्ष पर, हुआ परस्पर रण ॥
विजय पुरुष का गर्व, वीरता असि-धार है ।
तभी डूब गया कलिंग, रक्त-पारावार में ॥
न्याय व अधिकार हेतु, लड़ना अवश्यै सुकर्म है ।
किन्तु क्या विस्तार हेतु, युद्ध मानव-धर्म है ?
स्वप्न सदृश सुख हेतु, वह विस्तार में ही खो गया ।
युद्ध-ज्वाला में धधक, सब कुछ स्वाहा हो गया ॥
इस तरह उभय दल में, जम भयंकर रण हुआ ।
यही रण कलिंग के, अवसान का कारण हुआ ॥
प्रकृति की सुषमा मनोरम, रो पड़ी कुकर्म पर ।
आह ! यह कैसा कुठाराघात, मानव-धर्म पर !
भारत का, भारती से, वैर-युद्ध सदा रहा ।
दासता-जंजीर में, कारण यही जकड़ा रहा ॥
इस निर्मम युद्ध से, मानव-हृदय में व्रण हुआ ।
और वृथा ? अशोक-मन में, शोक का कारण हुआ ॥
मगध में विजय-दुंदुभि, बज रही थी मान में ।
मिट गया, कारण यही, नर सदा ही शान में ॥
विजय-श्री के आन पर, मानव सदा ही छल गया ।
इधर अश्रु-कण बहा, अशोक दुःख में ढल गया ॥

कलिंग-युद्ध-विराम पर, सम्राट कलिंग चल पड़ा।
देख मार्मिक दृश्य को, मन से विकल हो जल पड़ा॥
देखते ही कारुणिक वह दृश्य, आँसू भर लिया।
और अशोक दंत-मध्य, पश्चाताप में, अधर किया॥
लथपथ लहु से सने हैं, शस्त्रास्त्र शोणित धार में।
शस्त्रास्त्र मानो तिर रहे हों, रक्त-पारावार में॥
नररुण्ड व नरमुण्ड लुंठित, चिर निद्रा में जड़े।
मनहु रक्तिम लुंडिका, चहुँ ओर हो बिखरे पड़े॥
नोंचते लिहित श्रृंगालों के, दन्तौष्ठ लोहित हुए।
लोथों के लोथड़ों से, अघाय मन बोहित हुए॥
लोम हर्षक दृश्य स्वयं, निज नेत्र से न सहा गया।
और अशोक को वहां, पल भर न देख रहा गया॥
गिद्धों की फरफराहट, पंख में विनाशी रव।
उलट फेर की गाथा, सुनाते थे, पड़े शव॥
आँखों व मांसपिंडों से, अघाकर गिद्ध कहते।
नभ से नर-नाश की लीला, लख आते रहते॥
सर्व वन्य प्राणी अघाकर, स्तुति-मन्त्र पढ़ते रहे।
और कलिंग-वक्ष पर, दिन-मास मृत सड़ते रहे॥
लहु-लथपथ लाश को, नरभक्षक यों लथाड़ते।
ज्यों विभुक्षित मूषकगण, वस्त्रादि जमकर फाड़ते॥
अंतड़ियों को गिद्ध लेकर, उड़ चला ब्रह्माण्ड में।
मनहुँ पुनरावृत्ति का संकेत, लंकाकाण्ड में॥
एक ओर युद्ध वसुधा, रक्त से सींचित हुई।
और सरिता माँग की सिंदूर से रक्तिम हुई॥
रण बाँकुरों के रक्त श्रावित, हो धरा को धुल रहे।
उधर सरिता लोहित हो, सुहाग जल में घुल रहे॥

और वसुधा के सीने से, करुण चीत्कार निकला।
हृदय व वपु-व्रण से, रक्त का अति धार निकला।।
कलिंग की आहत धरा से, एक तीव्र पुकार निकला।
मनुजता के हृदय से, छिदकर अहिंसास्त्र पार निकला।
चहुँ ओर दृष्टिपात कर, मन विकल वोझिल हो गया।।
गहन चिन्तन में वक सा, अशोक आहत खो गया।
तत्काल अर्द्ध जीवित सैनिक से, एक चीत्कार निकला।।
ज्यों ध्वनित जलते तड़कते, बांस से अंगार निकला।।
राजनीति की साया में, रणनीति का अन्धकार।
पागलपन की मर्यादा में, अलक्षित है नर-संहार।।
जबतक ऐसी पागलपन का, अन्त नहीं होता है।
तबतक मानव-जीवन में, सुबसन्त नहीं होता है।।
गौरव का अभिमान मनोरम, राष्ट्र-प्रेम की धुन सवार।
विश्व-विजय की लिप्सा में, करतठ जाता विजयी प्रहार।
स्तम्भों पे विजय-कथा, अमर स्मृति की छाया है।
रणबाकुरों के अंगों में, रक्त लथपथ पाया है।।
संप्रेरक भू-विजय के लिये, राजनीतिज्ञों की माया।
स्वयं सिंहासन पर बैठे, मन में जो आया, करवाया।।
रणभेरी के गीतों में है, छुपी अनेक दर्द-कहानी।
लहु लुहान कंपित सैनिक की, दर्द भरी जवानी।।
राजनीतिज्ञों का हथियार, भाषण की पैनी तलवार।
"राष्ट्र हेतु मर मिटना ही, मानव-जीवन का अधिकार।।"
इतिहास और क्या ? हार-जीत की निर्मम गाथा।
मानवता का मर्म कहाँ, मानव को भाता ?
विश्व युद्ध में राजनीति की चाल चौकसी।
मानव भी अवसान क्षेत्र में पड़ा बेबसी।।
विश्व शान्ति का मार्ग त्याग आपस में, बैर प्रयोग।
उन्नत भाल किये लड़ने को, उद्यत हैं सब लोग।।

राजनीति के द्रोणाचार्यों की, बहुचर्चित नीति ।
मानवता-सुसम्बन्धों में, खड़ी हुई बन भीत्ति ॥
चक्रव्यूह की रचना ही, पांडव-विनाश का है कारण ।
राजनीतिज्ञों की माया से, सदा हुआ करता है रण ॥
कलिंग-कणों का सर्वनाश, लोलुप आंखों की भूल रहा ।
'विस्तारवाद' का ही चिन्तन, संहारवाद का मूल रहा ॥
कितनी माताओं की गोदी से, छीन गये कितने सपूत ।
कितनी सुहागिनें लुट गयीं, होकर आशाओं के अभिभूत ॥
कितनी बहनों के हाथों से, राखी का रंग मलीन हुआ ।
भाई का शाश्वत प्रेम जाग, सावन का रंग विलीन हुआ ॥
कितनी आशाएँ लुट गईं, कितने प्राणों का अन्त हुआ ।
कितने बेसुध मन डोल रहे, चिल्लाती-"क्या है कन्त हुआ ?
अशोक आतुर हो गया, कलिंग-गाथा चुभ गड़ी ।
अचानक एक बन्द कलिका, पतझड़ में उग पड़ी ॥
कह पड़ा-यह क्या किया अनर्थ ? हाय ! क्या करूँ ?
हाय, देवी, ! हाय मां ! दो न्याय, जीऊँ या मरूँ ?
हाय, पिंगलवत्स ! राधागुप्त ! जीवन कुछ नहीं ।
इन कुकर्मों से बढ़कर, और कुछ है तुच्छ नहीं ॥
पश्चाताप की आग धधक, रोम-रोम क्यों सिहर उठा ?
कलिंग के हर धूल कणों में, रक्तों का मन घहर उठा ॥
तुच्छ भूमि के हेतु, कलंकित जीवन करना,
कोसित जीवन की धारा में जीवित मरना ।
यह कैसा दुर्भाग्य, मानवीय धरती पे ?
मानवता की झोली में दानवता भरना ॥
दो गज धरती की इच्छा पे, दिग्विजयों का घोर प्रहार ।
सच है वसुधा वीर भोग्या, भोग न केवल है आधार ॥

भोग मनुज की क्षणिक तृप्ति, शाश्वत आनन्द नहीं है।
होकर भी पृथ्वीन्द्र जगत में, वह स्वच्छन्द नहीं है॥
अशोक होकर विकल आतुर, कष्टकर भावों से छला॥
एकान्त चिन्तित मन समेटे, दुर्ग से बाहर चला॥
अंगरक्षक रहित एकाकी चला, कुछ सोचता।
चिन्तित अवस्था में डूबा, चला मस्तक नोचता॥
और झंझा ने झकोरा, अवनि-अम्बर गर्द से।
गरजकर नीरद चीखा, विकल वसुधा-दर्द से॥
प्रकृति का यह भाव दुस्सह, अशोक से न सहा गया।
बिन गंगा-दरस के, अशोक से न रहा गया॥
अतः द्वन्द्वभाव का संघर्ष, नृप पर छा गया।
विमुद-आशायुक्त वह, गंगा-किनारे आ गया॥
सान्ध्य वेला की छवि, मलीन मन धोने चली।
सुखद मधुवेला, नत शिर, हो पराजित, क्यों छली?
हृदय-ताप विवर्धित हो, जलाने में व्यस्त था।
धैर्य-शौर्य समक्ष नृप के, विवश होकर त्रस्त था॥
कलिंग रक्तपात से ही, नृप-हृदय में व्रण हुआ।
हृदय-व्रण ही, सत्य जीवन का, अतः कारण हुआ॥

—०—

द्वितीय सर्ग

प्रसून

अशोक कलिंग विनाश से, अति व्यथित मोहित था पड़ा।
कटक पश्चाताप में निज उत्तरीय, मुषित खड़ा ॥
खड़ा गंगा-कूल पे, मन में व्यथित, चिन्तित घना।
गूंज धुंधले शब्द, हृदय-धाम में, दुःख से सना ॥
हे संस्कृति-बीज धारिणी ! हे पाप-कष्ट निवारिणी !!
हे ज्ञान-पथ प्रवाहिनी, ! हे सगर-सन्तति तारिणी !!
हे शम्भु-जटा विहारिणी ! गंगोतरी अवतारिणी !!
अशोक तेरे सामने है, ज्ञान दे उपकारिणी !!
प्रजा-भक्ति कर सकूं, सेवा-उदधि में तर सकूं।
वह साधना की शक्ति दे, मानव-हित पे मर सकूं।
तम में भ्रमित जीवन अति, आघात से आहत पड़ा।
पथ प्रदर्शन निमित्त झुक, क्षितिपाल कर जोड़े खड़ा ॥
हे सुरसरि ! सुरपुर धरा पे, ला सुभग सुमति दे दे।
जीवन-सुपथ-संचलन निमित्त, संयमित्त सुगति दे दे ॥
आज मानव त्याग श्रद्धा-जल तुम्हारा, अबुध है।
प्रेम-प्रवाह विहीन छाड़न, अतः विगलित अशुद्ध है ॥
जीवन विप्रयाण-विभु, विमानित जगत में सर्वथा।
विभुग्न हृदय विमुख होकर, विमुद होता सर्वदा ॥
विमानित जीवन, जगत से, विमुक्त होना चाहता।
हाय ! विभोर विभ्रान्तमना, ! मूल्य खोना चाहता।
विमुख हो विमार्ग से, प्रायश्चित सुकर्म है।
आत्महत्या पाप है, सुकर्म निश्चित धर्म है ॥
गिरकर संभलना ही मनुज का, जगत-पावन धर्म है।
विश्व से उब विमुख होना, सर्वथा अधर्म है ॥

त्रिपथगा-तट पे तरु नीचे, धरा पे मौन है।
पूछती मन में गंगा, यह उदास कौन है?
चिन्ता में था मग्न, नेत्र की ज्योति अचेतन।
हृदय प्रज्वलित, घबराहट सी, सता रहा था संवेदन॥
लाखों मनुज की यातनायें, मरण-आहत की व्यथा।
क्यों न देगी सजा मुझको, कलिंग की घायल कथा?
प्रायश्चित करने तुम्हारे, पुनीत तट पे आ गया।
चिन्ता का गहन बोझ, मानस-पट पे छा गया॥
चिन्ता न क्यों हो? पूर्व के कुकर्म से हूं मैं बँधा?
अच्छे बुरे निज कर्म का, फल भोगता मानव सदा॥
बस इतनी शक्ति मुझमें दे, सुरनिम्नगा! प्रबल।
मिट सकूं मैं जड़-चेतन हेतु, जीवन में संभल॥
भूत भविष्यत मध्य की, यह कड़ी बर्तमान है।
शुभ घड़ी यह मनुज-जीवन में अति महान है॥
होनी नचाती जड़-चेतन, काल अति शक्तिमान है।
संभाव्य होनी की धुरी, पे मनुज गतिमान है॥
तत्काल गंग-तरंग से, उमंगित स्वर संग आया।
"निराश हतोत्साहित मत हो, विश्व-हित का जंग आया।
सत्वर उठा लो धम्म-चक्र, मनुज-हित-संघर्ष में।
दया अहिंसा गूंज उठेगी, भव्य भारतवर्ष में॥
मानव-सदा पुष्पित हुआ, श्रद्धायुक्त भक्ति से।
विश्व जीवित कब रहा, अविजित निर्मम शक्ति से?
मानव दुखित है सर्वदा, अबोध स्वार्थ पूर्ति पे।
प्रकृति-कार्य्य चलित नहीं, बिन भक्ति सगुण मूर्ति के॥
उठो अशोक मांग है, तुझ सम बीर सशक्त की।
दुखी मनुज पे द्रवित, इच्छा तुम्हारे रक्त की॥"

अशोक चिन्तित व्यथित हो, सुरसरि से कह पड़ा।
और छिछले धार में उत्कंठित मन वह पड़ा॥
निर्वाक् निमीलित नयनों में निमज्जित एक भाव पला।
बैठे गंगा के पावन तट पे, क्यों जीवन निर्मोह छला?
था पुरा काल में, गंगे! तेरा पूर्ण प्रवाह।
आज तेरे में उथल-पुथल, स्वाँसों में आह॥
विश्वासों की गहराई, खो गई किनारा।
छिछलेपन में उदासीन, है तेरी धारा॥
माना हमने, है नवीन जग और मनोहर।
ज्ञान और विज्ञान क्षेत्र में, मनुज धुरन्धर॥
सुघर सलोनी यह वसुधा, तेरे दर्पण में झाँक रही।
आज अशान्ति की कीमत, विह्वल मन से है आँक रही॥
वह अथाह जल कहाँ गया? तू आज पड़ी है रीते।
वह अतीत का पावन वैभव, मिटा, कई युग बीते॥
जग सुषमा का सत्य रूप, मिट गया, बनी सुन्दरतर धरती।
स्वप्न सरिस भौतिक सुख पाकर, मानवता पाने को मरती॥
परम शक्ति से हो विमुख, मानव छलता है।
सुख पाने के लिए, अशांति में पलता है॥
ज्वार भाटा सम उथल-पुथल, उत्थान-पतन की लीला।
देख उतार-चढ़ाव लगा, जग बेंत सदृश लचीला॥
वह निर्मल जल हो मलीन, द्युतिहीन और हो उदासीन।
खो शांति-विश्वास, दर्पपरिपूर्ण, कल्पनाएँ नवीन॥
गंगे! तेरी फेनिल लहरों में, कैसा उत्थान-पतन?
हर धाराओं में बोझिल स्वर, तुझमें बेसुध हैं कम्पन॥
तेरे तट पर, सैकत-चट्टानों में, संघर्षों का प्रतिफल।
हिमगिरि के उत्पीड़ित दृगसे, बहते तुझमें करुणा-जल॥
तेरे सैकत के उज्ज्वल तल पर, झंझा का विकल प्रवाह।
तूफानी वातों के उर में, शांति-मेघ की अमित चाह॥

री गंगे ! तव तरंगों में, यह प्रकम्पित नाद क्यों ?
उदक-तल पे उच्छ्वासित, अनिल व अवसाद क्यों ?
ये अशांति के भँवर क्यों, नाच गहरे हो चले ?
मानो छुपाये दर्द आँचल में, वैभव खो चले ॥
ये बचे विश्वास के छाड़न, समेटे हृदय-ताप ।
और आहों से छिटक, ये उड़ते निर्दोष-भाप ॥
वस्तुतः इस भाँति जीवन, नीरस बेढब खिन्न होगा ।
कलह, हलचल, दुर्दशा, मानव-नियम से भिन्न होगा ।
देवगंगा अमिय की रसधार लेकर कब बहेगी ?
विश्वास, श्रद्धा-मृतिका कब, नीरस रेतों पे जमेगी ?
प्रज्ञ-चक्षु प्रगल्भ नृप उठ, मातु गंगा से कहा ।
संकल्प करके जा रहा हूं, देखना क्या हो रहा ?
अतः मै रक्तिम धरा को, पुनीत हरित रंग दूंगा ।
सर्व प्राणीमात्र-जीवन को, उदधि-उमंग दूंगा ॥
क्षमादात्री ! क्षमा कर दे, शांति-पथ पे चरण होगा ।
पुनः जम्बूद्वीप-तल पे, प्रण है कदापि न रण होगा ॥
दीर्घ स्वांस उच्छालकर, अशोक वापस चल पड़ा ।
ज्यों गज निजसुंड से, जल बुन्द तज उच्छल पड़ा ॥
वक्तव्यता है न वह, जो कार्य्य हेतु समर्थ है ।
समर्थ हो कर्तृत्व पर, अभिमान करना व्यर्थ है ॥
पाकर विजय श्री हार तुल्य, तब तक सदा मै मानता ॥
जब तक न मानव-हृदय पर, हो जीत, उचित जानता ॥
मानव-हृदय कचोटना ही, अहिंसा का मर्म है ।
अहिंसा असुरत्व की जननी, असुरत्व अधर्म है ॥
अधर्म जड़-चेतन का, बैरी रहा है सर्वदा ।
सत्य सुख का इच्छार्थी, होता रहा है सर्वथा ॥

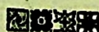
सुरसरिते ! ज्ञान-दीप, जलता रहा तव कूल पे ।
अज्ञानता के वश दुखित, मानव रहा प्रतिकूल में ॥
सत्य सुकृत जीवित है, पावन तुम्हारे नीर से ।
वरद पुत्रों ने जगाया, धर्म रह तव तीर पे ॥
कर्ण-पट में मूक ध्वनि, गूंजित मधुर समीर था ।
अशोक अति दुख-द्रवित, धर्माशक्त, अति गम्भीर था॥
गंगा ! तेरे उच्च तरंगो, को झंझा संग उठ गिरना है ।
हिमगिरि के उत्तुंग शिखर से चलकर, सागर में मिलना है ।
तुझ में तब तक संगीत भरा, जब तल लहरों का टकराना ।
चट्टानों संग हँस-हँस क्रीड़ा, करते आगे बढ़ते जाना ॥
गंगे ! तेरे पावन जल में, है अतीत का गौरव ।
पाप नाशिके ! सुवासित तुझमें संस्कृति का सौरभ ॥
जब तक हम अपने अतीत पर, ध्यान नहीं रखेंगे ।
जब तक हम अपनी संस्कृति का मान नहीं रखेंगे ॥
जब तक हम अपना सुपथ, पहिचान नहीं पायेंगे ।
तब तक दुर्दिन कष्टों से हम, कभी न बच पायेंगे ॥
गंगे ! तेरे तट पर ही, सभ्यता, संस्कृति पली है ।
तेरे ही तट पर, वरद पुत्रों की भीड़ लगी है ॥
जब भी मानव-हृदय, टूट कर चूर्ण हुआ है ।
पाकर तेरी शरण, आस परिपूर्ण हुआ है ॥
उतार चढ़ाव कम्पित लहरों का, मानव-जीवन का दुःख दर्द ।
क्षणिकता की ढेरी रद चिन्हित, मानव-जीवन का अधोपतन ॥
कलिंग विजय की गाथा में, उपजा एक धर्म-प्रसून ।
नेत्रों के रग-रग में छाये, चिन्ता के मजमून ॥
अतः जाकर शीघ्र ही, वह संघ में सम्मिलित हुआ ।
बुद्ध-शरण प्राप्त कर, रवि-भांति दिव्योदित हुआ ।

तब चण्डाशोक धर्माशोक बन उदित हुआ ।
पूर्वापर सोच अर्वाचीन पर मुदित हुआ ॥
बुद्ध प्रतिमा के समक्ष, शिर झुका जाने लगा ।
उपस्थित सम्मर्द-मध्य, सुवाक्य बरसाने लगा ॥
धर्म पर अधर्म की, जीत जब होने लगे ।
भूलकर कर्त्तव्य-पथ, निज स्वप्न में सोने लगे ॥
और फिर मानव का विकास जब अवरुद्ध होगा,
ज्ञान का दीपक लिए, इस धरा पे बुद्ध होगा ।
विमुख होकर धर्म से, नर पशु जब होने लगे,
निरुद्देश्य भ्रमित मानव निज पथ खोने लगे ।
दुर्वृत जन परस्पर झगड़ने, के निमित्त जब क्रुध है ।
शान्ति, अहिंसा, दया का, संदेश देता बुद्ध है ॥
मोह बन्धन में जब, मानव कभी छलने लगे,
ईर्ष्या, द्वेष, वैर और लोभ में पलने लगे ।
दानव से जब कभी सज्जन त्रसित व क्षुब्ध है,
ऐसे अन्धेरे को मिटाने के लिए ही बुद्ध है ॥
वासना व भोग में हो लिप्त जब मोहान्ध हो,
सत्य शक्ति से परे, मानव जब मदान्ध हो ॥
जब कभी विस्तार वै उपलब्धि हेतु युद्ध होगा,
तब-तब अहिंसा, दया का मशाल थामे बुद्ध होगा ॥
नियम सद्व्यवहार का जब अन्त होता है कभी,
उस धरातल पर कदापि बसन्त होता है नहीं ।
कारुणिक जब दृश्य होता, हृदय पिघले क्षुब्ध हो,
सदाचार न्याय लेकर कब न आया बुद्ध है !
समय, देश, दशा बिन समझे करते कार्य्य हैं ।
ऐसे मानव का पतन, अवसान भी अनिवार्य है ॥

पथ पहिचाने बिना, करते कार्य अंधाधुंध है,
हर चौराहे पे पथ निर्दिष्ट करता बुद्ध है॥
उत्थान की हर चरम सीमा, ढूढ़ती अपना पतन,
हर अत्याचार का होता अरे! कब तक सहन!
हर पाप का अंतिम सदा परिणाम सुकृत शुद्ध है,
पाप, कष्टों को मिटाने, हेतु आता बुद्ध है॥
विभीषिका जब युद्ध की, लहु बरसाने लगे,
आकर अहिंसा-भाव मन में, सदयता छाने लगे।
रक्त-पारावार में डूबा, मन भी न शुद्ध होता,
ऐसी परिस्थिति में अवतरित, इस धरा पे बुद्ध होता॥
परिस्थितियाँ, समस्याएँ जगती पे असह्य विकट होतीं,
जब जगत-अवसान की घड़ियाँ, अति सन्निकट होतीं।
जब मानव के हृदय में, द्वन्द्वता का धुंध होता,
पुनरुत्थान, समाधान शांति हेतु बुद्ध होता॥
मानवीय दुःख दर्द से, जग में हाहाकार होता।
भूख, प्यास, विलासिता में, मुख दैत्याकार होता।
जब कभी मानव यदि निज पाप कारारुद्ध होगा
ज्ञान दे बन्धन मिटाने हेतु हर थल बुद्ध होगा॥
पशु पक्षी और और नर-संहार का व्यापार होगा,
दान व उपदान तज स्वार्थ जब आधार होगा।
जब कभी मानव सृष्टि- विधान के विरुद्ध होगा,
कर्ण, शिवि दधीचि को, कर में थामें बुद्ध होगा॥
जाति वर्ण-विभेद से, मानव जब जलने लगे।
साम्प्रदायिकता उभर, विष भांति फैलने लगे।
उद्बोध कारज पड़ा, नर ध्वस्त, न उदबुद्ध होगा,
उद्भ्रान्त जन के हेतु बन, उद्योत हर थल बुद्ध होगा॥

संक्रान्ति काल की घड़ी, मर मिटने की लगन।
क्यों न हो ? धूमिल पड़ा हो वसुधा नीला गगन ॥
प्राणप्रद पुरस्सर बन, जनहित प्रति प्रबुद्ध होगा,
आशीष कर थामें प्रमोदित, सामने ही बुद्ध होगा ॥
पौरवृद्ध पौराधि सेवक बन, परमार्थ पर खिले।
जागतिक जगार हेतु जन-जन परस्पर मर मिटें ॥
ज्वाल से निवट सदा पापत्व से न परिशुद्ध होगा,
श्रद्धा का बीज लेकर, इस धरा पे बुद्ध होगा ॥
सत्य पर असत्य की, जब विजय होने लगे,
निराश होकर जगत से, बेसुध नर रोने लगे।
न्याय ही असत्य पर, आधारित अशुद्ध होगा,
विक्रमादित्य का हृदय लेकर धरा पे बुद्ध होगा ॥
ध्येय पथ से विचलित, रंगरेलियों में मस्त होगा,
और मानव मनुज-हित विस्मृत भोग व्यस्त होगा।
ध्वस्त होकर मानवीय व्यवहार जब अशुद्ध होगा,
कर्त्तव्य-पथ-प्रदर्शक हो, इस धरा पे बुद्ध होगा ॥
इस भांति 'नृप-जयति' वचन उचार जन जाने लगे।
धर्म निमित्त सुसंगठित हो मुर्गबांग बरसाने लगे ॥
पुष्पपुर में पुष्पद्रुम पुहुपरज-रस घोलता।
पुष्पाकर बिन पुष्पित उद्यान मानो बोलता ॥
त्रिवर्ग-त्रिवेणी बन, त्रिविध ज्वाला हर रहा।
त्रैकालिक सुख का निधोर, त्रिलोक एक सर कर रहा ॥

क्षमापति का क्षत्र-धर्म क्षमा पर छाने लगा।
क्षिप्र क्षिति पर क्षुधातुर, क्षय हो छहराने लगा ॥
निरापद हो नर, निराधि, निरपराध होने लगे।
निरुद्विग्न निज निकेतन में, निर्भय सोने लगे ॥
इस तरह सुख-शांति निमित्त एक वर्ष समय लिया।
और बोधद्रुम दर्शन हेतु दृढ़ निश्चय किया ॥



तृतीय सर्ग

पराग

राजुक, प्रादेशिक, युक्त धम्म में प्रवीण हैं।
धम्म-महामात्य अब, अध्यात्म में तल्लीन हैं॥
धाय को शिशु दानकर, यों मां हुई अविकल यथा।
भार तज अधिकारियों पर मुक्त होकर चल पड़ा॥
प्रजेश दें प्रज्ञप्ति प्रजागुप्ति हेतु समस्त को।
हो गये छोटे-बड़े कर्तव्य में अति व्यस्त वो॥
कर्त्तव्य से बढ़कर धरा पे, धर्म होता है नहीं।
कार्य-फल-कामुक पुरुष से, कर्म होता है नहीं॥
सर्व सुख-निधियां जगत में, सत्य सुख भोगी है कौन?
तोषहीन मनुष्य है, फिर सुख रहित हो क्यों न मौन?
भाव शुद्धि हेतु अन्तरावेक्षण अनिवार्य है।
मानवीय सद्भावना में ही निहित सुकार्य्य है॥
गुरु-आदर, गुरु-सेवा; से प्रजा का ज्ञान होगा।
भाव हो उदारता का, निज अनुज पे प्रान होगा॥
बौद्धभिक्षुक सुपंथ पे चल, कामना निर्वाण की।
ज्यो घिरा हो कष्ट में नर, यत्न में परित्राण की॥
गार्हस्थ्य जीवन में है परिकल्प जिसकी भावना।
परिकीर्ण पदरिपु से परे, पद-कंज-पद की कामना॥
परिखिन्न हो परत्व से, बन पापदृष्टि, पापधी।
वे पातकी पारत्रिक स्वर्गिक कामना के पारखी॥
चहुं दिशा में स्वत्व वे समभाव का विस्तार हो।
हेमकान्ति सम उज्ज्वल कीर्तिमय संसार हो॥
प्रति तृतीय वर्ष दौरा कर, कष्ट को पहिचान लें।
लोक के कल्याण नैतिक उन्नति पर ध्यान दें॥

महामात्र, मुख, अन्तपाल, व्रजभूमिक सभी।
स्त्री-अध्यक्ष, व्यवहारिक, सब क्षेत्र में फैलें अभी॥
धर्म की ही ग्लानि से, मानवता का क्षरण होता।
जीवन-मरण दुर्धपमय, पावन धरा पे रण होता॥
धर्म-कर्म मिश्रित परस्पर, धागा सूचिक संसर्ग ज्यों।
धर्म विहीन कर्म छूछा, कर्म बिन है धर्म त्यों॥
राजभक्त धर्मभक्त, वन करे गमनागमन।
कर्त्तव्य-पथ पर यथा नियमित, द्रुत गतिआता पवन॥
प्रेम का वितरण यदि, ममत्व पे आश्रित होगा।
दुख-भोग पर यह राज्य, कदापि नाधारित होगा॥
स्वार्थ से परिपूर्ण विनयशीलता, सम्मान, प्रेम।
पतनोन्मुख राज्य की पहिचान, अनैतिक नेम॥
प्रजा-जन भयमुक्त हो, कर्त्तव्य-पथ स्वीकृत करें।
धर्म-पथ पर चल सदा, मुकुट को कृतकृत करें॥
राजा नहीं कुछ, मुकुट ही, शाश्वत प्रभुसत्ता अमर।
प्रभुसत्ता सदा हर्षित, प्रजा-सुख व शांति पर॥
प्रभुसत्ता का आदेश, सर्वथा सर्वमान्य होगा।
राष्ट्र सुसम्पन्न सुखमय सर्वथा धनधान्य होगा॥
अवसान हो अविछिन्न, जन-अवसाद व अवसन्नता।
पौरांगना पौरिक के मन में पूनीत प्रसन्नता॥
बोधितरु को निरखते ही, बुद्ध मन में छा गया।
भावना बोधिसत्व की छाई, लगा कुछ पा गया॥
और बौद्धिक-भाव तब, संभाव्य सहचारण हुआ।
बोधि की उपलब्धि ही, रण-त्याग का कारण हुआ॥
क्यों न हम सदुपाय में, पर्यटक बनकर चल पड़े ?
हर समस्या के लिए, बलिदान बनकर जल पड़े॥

जब मानव पर विपत्ति, कष्ट व संघर्ष होता।
मानवीय अन्तः करण की शक्ति का उत्कर्ष होता॥
नृत्य कर केकी-मन, क्योंकर अचानक रो पड़ा।
ज्यों निशापति देखकर, निजदाग चिन्तित खो पड़ा॥
पारखी ही मोल करता है, सदा हीरा परख।
राज्य नृपति अयोग्य के कर, राज्य का बेड़ा गरक॥
बुद्ध के आदर्श पर चल, हो रहा जहँ कार्य्य है।
राज्य का उन्नति-शिखर पर, पहुँचना अनिवार्य्य है॥
जाति भेद विभेद क्या? जब प्राण सर्व समान है।
एक शक्ति की सभी, यह मानवीय सन्तान है॥
प्रजा सुख ही प्रमुख है, राजकीय विधान में।
वसुधेश-गौरव मुकुट पे, राज्य सुख सम्मान में॥
दरी-गृह निर्माण का, आदेश देकर चल पड़ा।
और गया-धाम का, चिन्तन मन में ढल पड़ा॥
विजन भूधर-विथिका में भिक्षुक सेवा रत रहें;
और अश्रु रहित प्रजा पर, ध्यान पितृवत करें॥
उपगुप्त और मोग्गलिपुत राजुकों के साथ चल।
चिन्तन में व्यस्त थे, दुखद जग में हाथ मल॥
मुख मोड़कर आह्वान कर, महेन्द्र से कुछ कह पड़ा।
तर्जनी से कर इंगित—बोधिसत्व, सदय खड़ा।
सर्व सुख परित्याग बुद्ध महान, निर्जन वन चुना।
सत्य की सुध्वनि अग्र, निज कर्णपट में था सुना॥
जीर्ण जगत को समझ वह, सत्य के सन्निकट था।
दुखमय सांसारिक जीवन, अति संभय अति विकट था॥
क्यों न हम भी सत्य हेतु, लोक-हित पे मर मिटे?
सत्य-सुख निमित्त सत्सेवी बन सत् पर मिटे।
जग में जबसे मानव, सत्य से वंचित रहा।
मानवीय इतिहास में, दुःख-कष्ट ही संचित रहा॥

दशनावरण दशनावली पे, दग्ध द्रुम सा दीप्त हो।
अशोक डुबा शोक में, महि-दर्द से उदीप्त हो॥
दाभ मूल सदृश, दृढ़ संकल्प कर वापस गया।
और मगध विशाल के, उन्नयन पे केन्द्रित भया॥
गया से वह गया फिर भी, गया मन से ना गया।
हाय ! बोधिसत्व ! ! शांति-कल्पना में बह गया॥
नीमीलित नयनों में निरुपम प्रकाश प्रदीप्त हो।
बुद्ध दर्शन कर, प्रकाशित चल पड़ा निर्लिप्त हो॥
सान्ध्य बेला तब नृपति को, सद्य बहलाने लगी।
रवि-किरणें पहन कर परिधान, बहकाने लगी॥
मेघमाला-मध्य से, लो ! स्वर्ण ज्योति आ गई।
ज्यों अविरल साधना लख, सत्य किरण समा गई।
वृक्षादि विविधाकृति सदृश बादलों का वह पड़ाव।
गगन-शिर प्रकीर्ण, क्षितिजाकर में नभ-रक्तश्राव॥
तुरत हो पिताभ क्षैतिज क्षेत्र नीरद से सना।
मनहु पूर्ण शशांक में कलंक हो काला बना॥
अचानक ही एक विशाल रूप बादल झुक गया।
नील नभ-तल में अचानक, नाद हलचल रुक गया॥
बहुरंग-बादल क्षितिज तल की ओर आलिंगन किए।
चल पड़े नीलाभ तल से दूर, द्विज सम फन किए॥
और केचुल डालकर द्विज-मेघ विवर में चला।
नील नभ श्वेतांश से विक्षुब्ध हो व्याकुल जला॥
लघु मेघ-खण्ड दूर नभ पे, श्वेत रंगों में सने॥
जनु भेड़ों का झुंड विस्तृत, नीलगिरि पे हों घने॥
श्वेत नीरद-खण्ड मध्य, नीलाभ की शोभा विचित्र।
जनु शुभ्र खण्डित हिम से, नीलगिरि लक्षित पवित्र॥

द्रुम-पल्लव रिक्त विज से, कोक प्रिय का किरन जाल।
मनहु तरु से झांकते हों, पुष्प वन श्वेताभ प्रवाल ॥
देख संध्या-दृश्य निज मन में कुछ कहने लगे।
कल्पना के सुरभि-सागर में तुरत बहने लगे ॥
प्रकृति के सब तत्व शोभित रूप पृथक विशेष हैं।
चित्र सम उतिष्ठ हो, मोहित पलक अनिमेष हैं ॥
बग-पंक्ति वर्तुल धवल रेखीय, से गगन गुंजार है।
यों दिखते संध्या परी के, निडर पहरेदार है ॥
काक, मैनें, शुकादिक का, हो रहा गमनागमन।
कार्य्य-काल समाप्ति पर, देता विदा नादित गगन ॥
विटप बोझिल हो गया, द्रुम-पात में हलचल हुआ।
साँझ के अभिराम से, अति नीड़ में कलकल हुआ ॥
प्रकृति की लीला अति विचित्र, अपरम्पार है।
वृक्ष आंगन में अन्तिम, मचा हाहाकार है॥
तुरत निखिल प्रान्त में, निस्तब्धता छाने लगी।
मस्त मदिरा से बेसुध, वायु फिर गाने लगी ॥
हर खलबली उपरान्त ही, शांति का संसार होता।
अति वेग अन्ध्योपरान्त ही वर्षण जलधार होता ॥
दिवस-श्रम से क्लान्त खग, फुनगी पकड़ हिलने लगे।
नीड़ में छोड़े अकेले, शिशु-मन खिलने लगे ॥
क्यों न पा पितु-मातु को, मन की विकलता दूर हो ?
पेट हेतु प्राणी-जीवन, श्रम से भरपूर, अहो !
स्वर्ग का लक्षण प्रकृति की शांति में निहित, अहो !
क्यों न स्वर्ग इह धरा पे, प्रकृति में निहित, कहो ?
जप, तप व योग-साधन, सब प्रकृति के दास हैं।
प्रकृति के संसर्ग में सर्वेश लगता पास हैं ॥

अखिलेश के कर से निर्मित, प्रकृति विचित्र, विशेष है।
धरा धारण कर नचाता, फनों पर दृढ़ शेष है॥
वरुणाश्व पे पर्यटक-नीरद नील-नभ छाता गया।
और प्रकृति के काजल, घुलकर ढाता गया॥
सप्त स्वर गूँजित धरा पे, सरगम छिड़ने लगे।
प्रकृति के हर तत्व पृथक विशेष फिर मिलने लगे॥
चटकों का चहकना, कौवों का काँव-काँव।
डूबने में व्यस्त है, समुद-निधि में गाँव-गाँव॥
सूर्य किरणों को समेटे, क्षितिज तल में धंस रहा।
मनहु प्रेमी निज प्रिया के, प्रेम-वश में फंस रहा॥
पथिक पथ को छोड़कर विश्राम को जाने लगे।
चरवाहे ढोर संग रजकण उड़ा आने लगे॥
धुंध में गिरि शृंग की, शोभा प्रलक्षित हो यथा।
धुम्रावरण में ग्राम —नगर, दिखते वोहि तथा॥
सप्त रंगों में सना, यह व्योम तल यों दिख रहा।
निज तुलिका से सृष्टिकर्त्ता मनहु सुरधनु लिख रहा॥
प्राची दिशा में मेघ खण्डों का अचानक यह जमाव।
मनहु कुंजर कारवाँ का, कल्पतरु नीचे पड़ाव॥
मार्तण्ड-ज्योति, तम मध्य तव, संघर्ष फिर छिड़ने लगा।
छुछुन्दर को सर्प सम, तम ज्योति को खिलने लगा॥
सान्ध्य गीत मधुर मनोरम, ग्राम-वधु गाने लगी।
मारुत संग मिलकर मधु ध्वनि, हृदय पट हिलाने लगी॥
उधर धर्म्मामात्य संग सुन गीत, अति हर्षित हुए।
विथकित मन लाघव हो, अशोक आकर्षित हुए॥
सजधज कर संध्या, निशि से मिलने जा रही।
डाल बिन्दी पहनकर, परिधान रक्तिम, जा रही॥

रवि आकुल विकल होकर, रजनी पे वार है।
विह्वल है मिलन को, मन प्रेम—पारावार है॥
तत्काल रजनी देख प्रेमी, एकाकी दुश्वार है।
कहने लगी-"हे प्रिय, आओ! शय्या तैयार है॥"
आलिंगन कर तृपित अलकों मध्य उसे छुपा लिया
मस्त हो मद में, सिमट, आंचल मध्य सुला लिया॥
प्रेम के उन्माद में, ले अंक में यों भर लिया।
देख ले लौकिक धरा मत, कपि-शिशु ज्यों धर लिया॥
जल-थल-वन-विथिका, परिक्लान्त हो सोने लगे।
और झिंगुर चमगादड़ अति मुदित होने लगे॥
यामिनी के कृष्ण-पट पे, जुगनूं यों छा गये।
मानो नीलाम्बर से उतर, तारे धरा पे आ गये॥
झिंगुरादि कीट अनेक, लोरी सुनाने से लगे।
श्रवण हो क्वणित मधुर धुन, संग मिल गाने लगे॥
टिमटिमा तारे मुस्कराकर, बधाई दे रहे।
प्रकृति के हर तत्व उत्सव में मजा हैं ले रहे॥
अशोक होकर मुग्ध तृपित, चित्र सदृश खड़े रहे।
दृश्य मारे नेत्र में, फल-कर्म भांति जड़े रहे॥
देख दृश्य अशोक का मन स्वगत, अहा! पुकार उठा।
हृदय-वीणा तार से, अचानक करुण झंकार उठा॥
अहो! प्रकृति-जगत में, अलौकिक अनुराग है।
फिर मानव-हृदय में क्यों दर्द की यह आग है?
प्रकृति का हर तत्व, नियमाधीन करता कर्म है।
नियम के विरुद्ध करना, कर्म अति अधर्म है॥
शाश्वत है प्रेम जग में, प्रकृति कर से जो मिला।
सत्य का अनुभव मन में, इन्द्र-कानन सा खिला॥

लो ! कलानिधि कौमुदी कलधौत सा छाने लगा।
दो घड़ी की कालिमा कर दूर, मन्द आने लगा॥
पौरजन व राजकर्मी नृप संग चलते तथा।
कर्म निष्ठ-कर्मवाद में, विश्वास करते हैं यथा॥
रात्रि की निस्तब्धता में, उत्कलित उड्पति-उल्लास।
वायु विहीन प्रान्त में, पुष्पित प्रफुलित यथा काश॥
सभी पगडंडी ज्योत्सना से पीताभ खिल रही।
धर्म शाखायें सभी, एक लक्ष्य से ज्यों मिल रही॥
इस तरह प्राकृतिक दृश्यों से यात्रा कट गई।
और बोझिल मानसिक, पीड़ा सिमट कर घट गई॥
देव निर्मित मन्दर में, उतर रथ से चल पड़े।
और अगला कार्यक्रम, उमड़ मन में ढल पड़े।
इस तरह उन्नीस बरस, प्रजा हितार्थ लगे रहे।
भ्रमण कर प्रजार्थ, निम्न वर्णित कर्म करते रहे॥
क्षुब्ध हो अशोक ने उपगुप्त का आह्वान कर।
पूर्ण परिषद को बुला, सबको साक्षी मानकर॥
राज्य सुख-सुविधा पर, होता विकसित ही सदा।
ऐसा करें सदुपाय, जिससे मगध हो सुख से लदा॥
सुनकर विचार अशोक का, उपगुप्त पल छिन मौन है।
फिर कह पड़ा कि "सृष्टि-संचालन करता कौन है?"
मनुज ने हर समय अपनी योजना पर बल दिया।
सृष्टि कर्त्ता योजनाओं के विरुद्ध ही फल दिया॥
अतएव जीवन में सदा, संघर्ष ही छाया रहा।
और माया का जगत ही, मनुज पे छाया रहा॥
लौकिकता अलौकिकता, तबतक न विकासशील है।
जबतक न मानव जगत में, व्यवहरित पंचशील है॥
सुन तर्क धम्मामात्य का, बातें समझ में आ गई।
जीवन-उदधि में शीघ्र ही, आशा-लहर भी छा गई॥

इस भांति मोग्गलिपुत्त से, कुछ और कहने को कहा।
प्रजा-भक्ति के बिना, मुझसे नहीं जाता रहा॥
इस भांति मोग्गलिपुत समिति समक्ष कुछ कहने लगा।
दधि-विचार-मध्य वह घृत हेतु सच महने लगा॥
धर्म नहीं, धम्म ही, मानव-जगत-वरदान है।
सभी धर्मों का साथी, धम्म प्रेम प्रधान है॥
धम्म में जलमीन सम, मन धम्म में बोहित होगा।
मानव सुखानन्द में ढल, सुख-पंथ पे आरोहित होगा॥
शक्ति के आलम्बन बिन, सृष्टि होती कब खड़ी?
मरेगा मानव एक दिन, दुर्दिन की गिन घड़ी॥
सुकर्म के आधार पर ही, धर्म सर्वोपरि हुआ।
धर्म ही मानव का, सबसे बड़ा भी अरि हुआ॥
तब अशोक-हृदय शान्ति में, अति निश्चल हुआ।
और तन, मन, हृदय में, बढ़कर द्विगुणित बल हुआ॥
किया प्रस्तावित समस्याएँ, सदस्यों के समक्ष।
कह पड़ा उद्‌गार मन का, तान गर्वपूर्ण वक्ष॥
प्रजा-हित का भाव खो, नृप-भोग में निन्दित तथा।
एक ही मृत मीन से, तड़ाग-जल निन्दित यथा॥
इस विशाल राज्य के हर थल पे सन्देश होगा।
प्रजा-हित सन्तान सम, परिवार सम, मम देश होगा॥
ज्यों निज सन्तान इह, परलोक में समृद्ध रहे।
त्यों मेरी प्रजा, सुख-संकल्प में सुदृढ़ रहे॥
प्रजा ऋण उन्मुक्त होना, छत्र का सम्मान है।
विश्व-हित में रत होना, राज्य का आह्वान है॥
प्रजा-पालन, राज्यहित, सुप्रशासक का धर्म है।
प्रजा हित-चिन्तन हेतु, कर्त्तव्य ही सुकर्म है॥

सघर्षमय युग का सदा आह्वान बस युग कर्म है।
जगत का प्रति पल सेवा-साधना युग धर्म है॥
प्रजा पर न हो, अत्याचार, राज्य विधान है।
हों अधिकारी सजग, अपराधक्षयी निदान है॥
है यही अभिलाष, मुझे दण्ड देना न पड़े।
कर्म ऐसा हो कि, न दुख मुझे सहना पड़े॥
किन्तु हो कर्त्तव्य से विमुख, कभी दुष्कर्म होगा।
विवश होकर हृदय-रक्त, क्रोध से अति गर्म होगा॥
राज्य-न्याय कहीं किसी कारण, न झुक सकता कभी।
निर्मल कर्त्तव्य-पथ पर, दब न रुक सकता कभी॥
भेरिघोष का अन्त हो, धर्म-घोष बुलन्द हो।
दिग्विजय का अन्त हो, धर्म-विजय स्पन्द हो॥
कलिंग होकर ध्वस्त नाशीरुप बहुचर्चित हुआ।
तब अशोकीय नीति अति अविलम्ब परिवर्तित हुआ॥
त्यागकर दिग्विजय-नीति, बन्धुत्व ही सविशेष होगा।
अन्तर्बहिरुन्मुक्त कर, भय मुक्त का आदेश होगा।
एक बार कलंक-धब्बा लगकर, फिर कब मिटा है?
नृपति पर कलंक क्यों? नृपति तो सबका पिता है॥
जातीयता समुदाय के आधार पर ही जंग होता।
प्रेम व बन्धुत्व का सम्बन्ध, इससे भंग होता॥
आपसी ही वैर से सुदृढ़ राष्ट्र रंक होता।
रंक होकर अन्त में नरेश होकर रंक होता॥
विश्वचक्र चलायमान, शान्ति ही दूरी रहेगी।
धर्म होगा सारथी, न आपसी दूरी रहेगी।
धर्म विहीन मनुज से ही, पशु सदृश कार्य्य होगा।
रक्त पिपासु दनुज का, अधोपतन अनिवार्य्य होगा॥

जब धरा पे धर्म-कर्म, बेवा बनकर रो पड़े।
हर युग में प्रेरणा बन, सत्य पावोगे खड़े॥
यों तो हमें उस शक्ति ने, संघर्ष में प्रेरित किया।
द्वन्द्वात्मक सृष्टि रचकर, कर्ममय जीवन दिया॥
पुष्पित शतपत्री में, पुष्प व कांटे भी है।
जीवन में दर्द व खुशियां सम बांटे भी है॥
पद्म में सौन्दर्य है कीचड़ उसका अंक भी है।
परम सुन्दर निशिपति में ज्योत्सना कलंक भी है॥
मन्दाकिनी में मकर है, आत्मा में मोह है।
धरा पे ऊँचे गिरि गह्वर, गहरे खोह हैं॥
अश्रु व मुस्कान का कारण केवल कार्य्य है।
प्रकृति का उपयोग चेतन हेतु अति अनिवार्य्य है॥
प्रजवन प्रभंजन से पतित द्रुम-पात होते छिन्न ज्यों।
पाहु पादक प्रेम-श्रद्धा पा, पाप से भिन्न त्यों॥
चारु चंचल दामिनी, ज्यों चमक कर फिर शान्त है।
मानव-जीवन गर्जनों से पूर्ण व परिक्लान्त है॥
मानव जीवन क्षणिक, पर विभेद कारक बांध है।
आतिथ्य-जीवन में मनुज, धर्मान्ध और मदान्ध है॥
विमार्गगामी विभ्रान्तमना विभ्राट से विमानित होते।
विपज्जनक व्यवहार से अपसरण अपमानित होते॥
अतः सर्व विचार का निष्कर्ष कार्य प्रधान है।
द्वन्द्वात्मक सृष्टि में सुधर्म दुख-समाधान है॥
धर्म आडम्बर नहीं, सार्वभौमिक धर्म होगा।
विश्वास पर अवलम्बित, निचोड़ इसका कर्म होगा॥
लघु-दीर्घ मोनं की कथा, होगी नहीं इस देश में।
राज्य-कर्मकार हो, तल्लीन बौद्धिक भेष में॥
हर प्राणीमात्र का जग में रक्षा मान होगा।
तभी क्षोणि पे क्षोणिप का अति सम्मान होगा॥

मनुज वह जो मनुज पे, बलिदान होता सर्वदा।
जीवन मरण पर हेतु ही स्वीकार होता सर्वथा॥
सत्य सुख सद् सुश्रुआ में, सदा परिलक्षित रहा।
और मानव-धर्म, बौद्ध धर्म में संचित रहा॥
धम्म महामात्य निज कर्त्तव्य पर अटल रहें।
कर्मचारी तंग जनहित में सदा अविचल रहें॥
परस्पर सहयोग से, सुखमय करें संसार को।
ज्यों चीटो संगठित हो, ले चले बहुभार को॥
तृतीय बौद्ध संगीति में, सुस्पष्ट विचार कर।
मोग्गलिपुत्त तिस्स ने, आह्वान कर आचार पर—
कहा चलने के लिये, धम्म पर अति बल दिया।
मनुज सुख निमित्त धर्म प्रचार करने चल दिया॥
और कहा—मनुज के सुख का सत्य स्वरूप क्या?
धम्म पर होकर अटल, श्रम करें वर्षा धूप क्या?
अभिलेख खुदवाकर यह सन्देश जन-जन के समीप।
भेजने का कार्य्य शीघ्र, आदेश देता है महीप॥
ताम्रपर्णि सतियपुत्र चोल जिसके हाथ में।
केरल-पुत्र पांडेय भी हिलमिल चलते साथ में॥
नाभपंक्ति, नाभक, कम्बोज योन गन्धार पर।
आन्ध्र, भोज, परिन्द, राष्ट्रिक पर अरु गिरनार पर॥
किया जिसने राज्य का विस्तार वह क्यों खो गया?-
नयन-वारि के कणों से पूछ लो क्या हो गया?
सीरिया, सिरीन, मिश्र, मेकदूनियाँ व एपिरस,
आ गले मिलते सदा थे मित्र बनकर मोहवश।
आज उनके पास जाते बन भिक्षुक आस पर,
बौद्ध धर्म-प्रसार का, आधार सारा प्यास पर॥

देश व परदेश में प्रस्थान के आदेश हैं।
कर्मचारी त्यागकर निज वसन भिक्षुक वेश है ॥
ज्ञान दीपक थामकर, अँधेरा मिटाने चल पड़े।
स्वयं हेतु, पर हेतु, बुद्धत्व पाने चल पड़े ॥
कर्म - क्षेत्र में धर्म की, लो ! दुंदुभि बजने लगी।
मगध-सीमा सद्गुणों के, पुष्प से सजने लगी ॥
कारण यही मगध की, महिमा सदैव अमर रहेगी।
मगध-कीर्ति-ज्योति रवि सम, सदा दिव्य प्रखर रहेंगी ॥
विश्व में भूपति अनेक, दिग्विजय में मस्त था।
किन्तु एक अशोक का मन, मन-विजय में व्यस्त था ॥
मज्जन्तिक, मज्झिम, महादेव, रक्षित, महारक्षित,
सोण उत्तर, धर्मरक्षित महेन्द्र, महाधर्मरक्षित।
भेज धर्म-प्रचार हेतु, पशु रक्षण अनिवार्य था।
निरामिष होकर स्वयं, धर्माचरण ही कार्य था ॥
धम्म-प्रचारादेश पर महेन्द्र हर्ष-नद में बहा।
और जाकर नृप समीप, आज्ञा निमित्त ऐसा कहा —
हे तात ! हे प्रजापति ! ! अब आप ही आज्ञा करें।
मन्यद हैं आप ही, कहिये अब हम क्या करें ?
आपका आदेश सर्वोपरि, सर्वमान्य होगा।
तभी मगध सुखी व सम्पन्न धनधान्य होगा।
बोलते ही महेन्द्र का मस्तक नत पग पर झुका।
और इधर अशोक का, आशीष-कर सर पर रुका ॥
हे तात ! करु कृतार्थ, भव-बन्धन से उन्मुक्त करें।
माया भरी इस सृष्टि से, मुझे भी तो मुक्त करें।
है क्या संसार में, कर्तव्य से बढ़कर, कहो ?
धर्म मानव सुख का, इससे परे क्या है, कहो ?

डूब सुख आराम में, जीवन-पल बेकार होगा।
भोग और विलास में, निर्लिप्त मन ! धिक्कार होगा ॥
आज मानव दौड़ता, क्या वस्तु पाने के लिए ?
स्वार्थमय धन-खोज में, भटके लुटाने के लिये ॥
यदि अशान्ति, दर्द ही, आख्यान है उत्कर्ष का।
फिर भविष्य क्या कहेगा, भव्य भारत वर्ष का !!
प्रजा की आंखों में आंसू, अहो, स्वराज्य क्या ?
छोड़ दो दोनों कल, सोचें हम हैं आज क्या ?
जनता-आंचल अश्रुपूर्ण गहरा गर्त होगा।
अवश्यमेव नरक का पर्याय, आर्य्यावर्त होगा ॥
सृष्टि पर एक शक्ति ने मानव उतारा क्यों ? अहो !
परस्पर सहयोग, सेवा, प्रेम-बन्धन में रहो।
गर्व करता मौर्य-वंश जिसने पाया आपको।
हे तात ? निज सुपुत्र को, दें पथ मिटाने पाप को ॥
वीतराग वीतचित्त, शोकहीन व वीतकाम।
वीरमाता वीर भार्या से विरचित मगधधाम ॥
मौर्य वंशीय लाज मेरी बहन, मेरे साथ होगी।
तभी कर अनुकरण सारी प्रजा मेरे साथ होगी ॥
हे देवानाम्प्रिय। प्रियदर्शी !! हे मगधपते !!!
अनुबन्ध हैं हम आपके आदेश में, कहिये करें।
क्या हैं असम्भव कार्य्य जग में, जो मनुज न कर सके ?
स्वर्ग का समग्र वैभव, ला धरा पे रख सकें ॥
आप मेरे ही नहीं, सारी प्रजा के पिता हैं।
सुख शान्ति व कृपा के, आप ही संहिता हैं ॥
आपके ही बाहुबल पे मगध की भवितव्यता।
राज्योत्थान का सदा कारण नृप-संवेदनशीलता ॥

निष्काम करते कर्म जो, फल-कामना से विमुख हो।
कर्मयोगी ही सदा फल-भोग करते मुदित हो॥
गुरु के आशीष पर ही, कर्म होता सर्वदा।
यथा पितृ-धर्म से ही, पुत्र बढ़ता है सदा॥
आपका हर शब्द ही, मगध-राज्य-विधान होगा।
निज पुत्र क्या ? सारी प्रजा के सुख का निदान होगा॥
सारी प्रजा कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर कटिबद्ध है।
आपके आदेश के पालन निमित्त सन्नद्ध है॥
रवि सदृश उज्ज्वल कीर्ति, शशि सदृश सद्वृत्त मन।
समादृत मगध समादृत, समारंभण में स्वदेश॥
सहस्रमरीचि सम निर्मल, सागरंगा सदृश पवित्र।
श्रामण्य धर्म सार्वलौकिक, सार्वत्रिक हो सर्वविहित॥
मुस्कान भर अधरों पे, अशोक अति हर्षित हुआ।
एक ही सुपुत्र पाकर, पितृ-मन गर्वित हुआ॥
आज से पर्यटक व्राजक बन भिक्षुक वेष होगा।
बुद्धत्वहीन विश्व का कोई न कोना शेष होगा।
अशोक का संघर्ष-चक्र, धरा पे चलता रहेगा।
जब तक नृप-रक्त-वृंद, अंग में पलता रहेगा॥
जब तक न मानव, मनुज हेतु, बलिदान को तैयार होगा।
तब तक न धरा पे, शान्ति, दया, प्रेम आधार होगा॥
प्रण है जब तक न मगध में शाश्वत बसन्त होगा।
इतिहास की पृष्ठोंपर धरा से, मौर्यवंशीय अन्त होगा॥
स्वयं निज कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर होंगे, कहो।
एक ही सुपुत्र पा सौभाग्य बढ़ता है, अहो!
सहस्र द्रव्य परिपूर्ण हो, उसका क्या सम्मान होगा?
एक सिक्का तुच्छ ही, हृ दान योग्य, महान होगा॥

है सुविज्ञ अशोक का निज पुत्र भी अशोक होगा।
तुझ सदृश ही पुत्र पाकर, मगध भी सुरलोक होगा॥
क्यों न आर्यवंश को, हो गर्व तुझको प्राप्त कर !
तुझ सम ही कर्मवीर, करते भरोसा आत्म पर॥
मैल हो निथार निर्मल नीर होता है यथा।
पाप व निष्पाप का भी, भेद होता है तथा॥
अत: पाप-पुण्य का अन्तर समझ यदि कार्य्य होगा।
हृदय स्वच्छ पुनीत कोमल प्रेममय अनिवार्य्य होगा॥
शुभ कार्य में खो समय, आज्ञा याचना अनर्थ है।
किन्तु गुरु-आज्ञा बिन भी, कार्य अनुचित व्यर्थ है॥
शुभ कार्य में फिर देर क्यों ? विलम्ब काल का बधिक है।
आज का सुकर्म कुछ, कल के अधिक से अधिक है।
है काल की धुरी चलित उपयोगिनी, द्रुतगामिनी।
है कर्मयोग निदान दुख का, क्रिया हो सहगामिनी॥
सृष्टि में लौकिक अलौकिक कर्म का समीकरण होता !
आज मानव का धरा से सुरांगन में चरण होता !!
और स्वर्गीय सुख, मानव के लिये उपभोग्य होता !
आज मानव मुक्त बन्धन, अमरता के योग्य होता !!
कार्य के पश्चात पश्चाताप में न शोक होता !
आज मनुज विशोक हो, मर्त्य भी सुरलोक होता !!
आत्म संयम पुनीत हृदय वाणी संयम रस भरी।
सच्चरित्र सदाचार पर, आश्रित क्रिया हो यश भरी॥
क्रूरता, हिंसा, ईर्ष्या, क्रोध और अहं परे।
कार्य प्रेम सहित परस्पर, आमरण मिलकर करें॥
त्रिरत्न मानव के कलुष को दूर करता सर्वथा।
मानवीय व्यवहार सुकृतपूर्ण होता सर्वदा॥

प्रजा नित निज धर्म पर सुदृढ़ व अटल रहें।
श्रवण, ब्राह्मण, आजीविक संघ निर्भय पल रहे ।।
धर्म केवल धर्म है, सर्व धर्म समान है।
लक्ष्य सबका एक है, विचार ही व्यवधान है ।।
स्फुट पुण्डरीक सदृश, सुस्मित सुरामद-सुनयन।
निरीह प्रजा पर टिकी है, कर सुकर्मों का चयन ।।
जब प्रलम्ब पृथुल करों से, प्रतिरुद्ध न कर्म होगा।
प्रणति प्रतन प्रणष्ट रीति से उबर सात्विक धर्म होगा।
दैववादी कर्म तज, भाग्य-रथ पर हो सवार।
दिवैया के स्वप्न-सुख-परिणाम, दुर्दंभ, दुर्निवार ।।
द्वन्द्वात्मक कर्म-चक्की में पिसा संसार क्यों ?
कार्य के अभाव में दुर्भाव दुर्व्यवहार ज्यों ।।
सुपथ कुपथ विचार कर, जब तक न कोई कार्य होगा।
लौकिक जगत में कष्ट व्याधि-आधि भी अनिवार्य होगा ।।
जब भी जगत में धर्म की, ग्लानि होती सर्वथा।
वंशानुगत सुकीर्ति-नर की, हानि होती सर्वदा ।।
हे पुरे! मगधोत्थान का आह्वान विद्युत सम प्रवाहित।
हो धरा पे जनाधिकारों की पूजा नित अबाधित ।।
है अटल विश्वास मन, चिन्ता विलय तब हाथ में।
कार्यशील मनुज की निश्चय सफलता साथ में ।।
यदि मगध अगाध बल, धम्म को विकसित करेगा।
प्रजा सुख शुभ कल्प-तरु सा, पल्लवित पुष्पित रहेगा ।।
आक्रोश विहीन प्रकृत से, निज साधना में अटल होगा।
मनुजता संवार ली, जीवन तुम्हारा सफल होगा।।
इस भाँति उन्नीस वर्ष पल सा बीत ढल ढलता नहीं।
कार्य में अति व्यस्त पल का, कुछ पता चलता नहीं ।।
हित कार्य में तल्लीन हो, सूर्यास्त लगता प्रात ज्यों।
वर्षों पुरानी बात भी लगती कल की बात त्यों ।।

—०—

चतुर्थ सर्ग

सुरभि

अशोक के जीवन में, जब शान्ति की आशा हुई।
बीसवें बरस तब, लुम्बिनी-दर्शन अभिलाषा हुई ॥
अंग रक्षक, परिजन, धर्मामात्य संग-संग चल पड़े।
राजकीय संभोग के हर तत्व धूमिल जल पड़े ॥
राजमहल की सीमा का, नीरव स्वप्निल सुख का संसार
राजसिंहासन राजमुकुट का कीर्तिमान लौकिक उपहार ॥
आज लुम्बिनी के उर में, हरित द्रुमों की शीतल छाँह।
प्रकृति अलौकिकता में सीमित, बुला रही फैलाये बाँह ॥
सत्य शान्ति का दीवाना, संसार दुखों का सागर।
पल में आतुर मन से निकला, करने सत्य उजागर ॥
है मन दग्ध विकल कातर, क्यों स्वदेश यों तड़प रहा ?
अपनी अनन्त इच्छाओं पे, सम्राट बना जग हड़प रहा ॥
है विक्षुब्ध क्यों जन अपना ? जब सब अपनी सन्तान, अरे !
जीवन निष्फल है निराधार, निस्सार राज बरदान, अरे !
पिक पपीहा मधुर स्वरों में, क्यों करते हैं करुण पुकार ?
आज गूंजता बन-कुंजों में, जीवन का आरोह उतार ॥
हाहाकार मचा जग में, होष्टों पर, कहीं बहार नहीं।
भले बसन्ती पवन सुगन्धित, पतझड़ का संसार वहीं ॥
संसृति में हो मनुज-प्रेम, हो संसर्गों में काल व्यतीत।
लुम्बिनी के तट पर आकर, खेल रहा सोहित अतीत ॥
अयि वनस्थली ! क्यों तेरे अन्तर्भंगों में दर्द ?
झटक-झटक कर शाखाओं से, उभर रहा है गर्द।
प्राकृतिक जनाधिकारों से, क्यों वंचित ये लोग ?
कुछ पाकर भी अति व्यथित, कुछ खोकर दुख का भोग ॥

क्या राज-भोग दैवीय अधिकारों का प्रतिफल ?
या अगाध विश्वास प्रजा का, या राजाओं का भुजबल ॥
अन्याय नहीं क्या ? प्रकृति भोग सविशेष करें ।
कुछ राजकीय वैभव समेत, कुछ दुर्दिन का वेष धरें ॥
करता विचार इन तथ्यों पर, जीवन-पथ घटता बीत गया ।
पहुँच लुम्बिनी के समीप, मन में प्रकाश उद्दीप्त हुआ ॥
विहँग मधुर ध्वनि में मधुगीत गाते हैं जहां ।
झुककर द्रुम के हरित पल्लव, मन बहलाते सदा ॥
वर्णन परे उस दृश्य का, ग्रामीणों का हर्षोल्लास ।
देख नीरद झुंड को ज्यों, भुजग-भुक् का नृत्य पास ॥
देख दिव्य ज्योति को, दिनकर अति लज्जित हुआ ।
और आने की खबर पे, पुष्प तरु सज्जित हुआ ॥
तरु-शाखाएँ झुकी, मग पे स्वागत हेतु सब ।
मन रंजक, चित्ताकर्षक, नृपति झट आयेगा कब !
बौद्धिक विकास की गाथा, राज्य में गूँजित हुई ।
नृपति की सद्भावना, जनमध्य अति पूजित हुई ।
शान्ति, दया, दान की चर्चा अनिल गति सम बही ।
अहिंसा की ज्योत्सना, जग-पीट पे प्रकटित भई ।
प्रकृति में कल-कल की, सहगान-धुन बजने लगी ।
और प्रकृति रंग-बिरंगे, पुहुप से सजने लगी ॥
नृलोक में नर का नृपोचित, नेह नैष्ठिक भावना ॥
नृपाल निशमन हेतु यह, निर्मल सम जन-कामना ॥
निहार नृप को पौरजन, श्रद्धामय पुष्पवृष्टि कर ।
पुलक पुनि-पुनि निरखते, पृथ्वीन्द्र की जयकार कर ॥
पृथुलोचन, पृथुलवक्षा पृथुग्रीव पृथ्वीपाल पर ।
पूर्वांचल से पूर्वानिल प्रवाहित भाल पर ॥

प्रजापालक प्रजा-धन पर, क्यों न भाव उमड़ पड़े ?
मृणाल सदृश कर जोड़, स्वीकारते स्वागत खड़े ॥
पहुँच निज आसन समीप, मुदित हो कहने लगे ।
"प्रजा मेरी भक्ति, मेरी शक्ति" कह हँसने लगे ॥

'बुद्ध के प्रति'

लो महा मोह-तम-पुंज, सघन कानन में छाया ।
उपवास कहाँ दे सका तोष, मन में विचार कुछ आया ॥
आलार उद्रक भी, जिसका मोह-पट न धो सके ।
सत्य के दुधिये किरण से, मन मलीन न धो सके ॥
उरवेला बोलती थी, काल कितना क्रूर है ।
भूख मुक्ति न दे सकती, सत्य तो अति दूर है ॥
अतीत सीमट नेत्र में, कल सा प्रतीत होने लगा ।
बुद्ध के सुचरित्र में मन, शान्त हो खोने लगा ॥
जो सत्य प्रकाश का अभिलाषी, व्रत का कैसा संयोग !
मज्झिमनिकाय सन्मार्ग मनुज का, शेष निरर्थक ढोंग ॥
वह हवा वसन्ती उरवेला की, दे न सकी सुख-चैन ।
हो व्यथित, दुःखी जग को पाकर, चिन्ता में भीगे नैन ॥
इन बातों पर कर विचार, अशोक शोक से धधक उठा ।
देख दशा वसुधा की कातर, उर विह्वल हो कसक उठा ॥
तज लोलुप प्यासी हथियारों को, रण से हट जाना होगा ।
सत्य अहिंसा दया प्रेम का, पंथ हमें अपनाना होगा ॥
मान प्रजा सन्तान, उन्हीं के सुख हेतु मिट जाना होगा ।
जन-जन की सेवा में अपना, तन, मन, वचन लगाना होगा ॥
विश्व शान्ति के लिए सैनिकों ! अपना बिगुल बजाना होगा ।
तुम्हें राज्य के कोने-कोने में, जाकर समझाना होगा ॥

युद्ध-क्षेत्र है मानवता, विजय हमारी है सुख चैन ।
हो न यहाँ मानव जीवन में, कभी अँधेरी रैन ॥
हर जन में सुकर्म धम्म की रीति, पहुँच समझाना होगा ।
त्याग, विलासी जीवन को, बुद्ध-शरण में जाना होगा ॥
मिल सके सुख, शान्ति मनोबल, ऐसा राज्य बनाना होगा ।
सुविचार सुकर्म भाव, सबके मन में उपजाना होगा ॥
अपना पुत्र समझकर सबको, अपने गले लगाना होगा ।
दर्द, विलाप, रुदन, उत्पीडन, मन से दूर भगाना होगा ॥
दिग्विजयी सम्राट नहीं, मन का राजा कहलाना होगा ।
मन-विकास अपसरण निमित्त, बुद्ध शरण में जाना होगा ॥
विजय हमारी नहीं धरा की, हृदय-विजय अपनानी होगी ।
अश्रु-कण विहीन धरा, प्रेम सहित बनानी होगी ॥
पतितो को पावन कर से, थाम उठा सहलाना होगा ।
काटों को नर्मी से थामें, पुष्पों को बहलाना होगा ॥
अथक परिश्रम के सीकर से, ऐसा बाग लगाना होगा ।
हरि, हिरण, गज, बाजि, अन्य जीवों को संग बसाना होगा ॥
हो न किसी में बैर-भावना, हिल मिलहाथ बटाना होगा ।
चोरें न, पहरेदार न हो, ऐसा राज्य बनाना होगा ॥
खुला द्वार होगा हर घर का, ऐसा भाव बिठाना होगा ।
रामराज्य का भाव जनों में, जनाधिकार जगाना होगा ॥
पथिक पखेरू पंशु निमित्त, नन्दन-कानन उपजाना होगा ।
प्रजा करे विश्राम रैन-दिन, चहुँ दिशि भवन बनाना होगा ॥
जन-सेवा और प्रजा-पालना धर्म हमारा होगा ।
अब न कभी संग्राम राज्य में कभी दुबारा होगा ॥
यह अशोक की राज-असि, सदा म्यान में होगी ।
युद्ध-क्षेत्र से ले विराग, नित प्रजा-ध्यान में होगी ॥
शान्ति का पानी मैत्री तलवार-धार पर अजर रहेगा ।
धरातल पर अशोक का सम्मान शाश्वत अमर रहेगा ॥

पर किसी भी शत्रु की ललकार सह सकती नहीं।
विलव बन झुककर कभी, चुपचाप रह सकती नहीं॥
राज्य में अन्याय अत्याचार का जब शर उठेगा।
किंवा कोई शत्रु भी ललकारता ऊपर उठेगा॥
तब अशोकीय शक्ति, यह ललकार सह सकती नहीं।
और धार्मिक न्याय का अपमान सह सकती नहीं॥
धम्म सार्वभौमिक, मानवीय नीति पर अटल होगा।
धर्म शाश्वत साधना जिसमें अपरिमित बल होगा॥
यह कर्मों की धरा कर्मकाण्डों की धरा नहीं है।
सब जप व्रत हैं व्यर्थ, धर्मान्धों की धरा नहीं है॥
कर्म-धर्म का योग करे, जीवन की शोभा तब है।
मध्यम मार्ग मुक्ति हेतु, सर्वोत्तम था, होगा, अब है॥
प्रजा भक्ति से बढ़कर कोई भक्ति नहीं है
सेवा से बढ़कर के, कोई शक्ति नहीं है॥
जनानुराग, सुसंकल्प सुविचार चाहिये।
सुकर्म, सुधर्म, सुआय, सभी में प्यार चाहिये॥
जग-जीवन की राह कब होती है खाली?
जगत-कानन का कब रे! सोता है माली?
एक शक्ति जिसके समक्ष मिल हम सब झुके हुए हैं।
जीव-जगत उसके संकेतों पर ही रुके हुए हैं॥
फिर मानव क्यों अरे! लड़ता लिये संगीन है?
जबकि पाकर विजयश्री भी शक्ति के आधीन है॥
क्यों न हम बुद्धत्व हेतु, बुद्ध-पथ अनुसरण करें!
जिसके संदेश संकट-मोचन, बुद्ध शरण हम ग्रहण करें॥
आर्य सत्य अष्टांगिक मार्ग स्वीकार करें जीवन में।
जातिवाद से दूर रहें, मिल कार्य करें जीवन में॥

हे बुद्धदेव ! मानव मन में, बनकर प्रकाश प्रविष्ट हो।
निकल अन्धेरे से प्रकाश में, मानव कर्म विशिष्ट हो ॥
वह मानव क्या ? निज को स्वयं समझा सके ना।
निकल पंक-पाप से, पावन धरा पें-आ सके ना ॥
कदर्थ हिय ज्यों कर्त्तरी, ऊपर मदुरतम तर्क है
अन्दर तो विष-अर्क है, ऊपर सोने का वर्क है ॥
चाहिये शिक्षा उस भयानक मनुज को, पोल है।
अन्दर से भेड़िया है, मेमने का खोल है ॥

जन समूह के प्रति

भारत विशाल विशाल ही हो, फिर कभी खण्डित न हो ।
सर्व सुख सम्पन्न जन हो, निरपराध दण्डित न हो ॥
हिन्दुकुश से बंग तक, हिमेश से मैसूर तक।
हिरात काबुल कन्दहार और काबुल दूर तक ॥
हिम-शुभ्र-यश विराट, भारत का सदा पलता रहे।
नैक जन-स्वतन्त्रता का, सर्वदा चलता रहे ।
संभलने का काल है, हम चोट बहुत खा चुके हैं।
डूबते इस नाव को, अब हम किनारा ला चुके हैं ॥
भव्य भारत की अरि, सन्तान ! अमर-दीप थामो।
हस्त में मुस्कान-मधुवेला संभालो, अश्रु बहुत बहा चुके हैं ॥
इस अमर चिराग को, फिर बुझाने का कभी अवसर न देना।
न्याय न अधिकार के पथ पर सजग हम आ चुके हैं ॥
सजगता से मोड़ मुख, ऊँघने की बात होगी, सोच ले।
अश्रु पीकर होठ दांतों में, बहुत दबा चुके हैं ॥
भारतीय रण बांकुरों के धधकते पराक्रम शौर्य देख।
बाह्य अरि अपने पताके, स्वयं अधो झुका चुके हैं ॥
शान्ति आराधक, किन्तु, समर में हम विजय अर्चक।
फूट के होकर शिकार, हम बहुत लुटा चुके हैं ॥

शान्त्यार्हिसा, दया, दान, शरणदान नीति होगी।
सुप्त सिंहों को जगाये मत कोई, हम अतीव अघा चुके हैं ॥
किन्तु रणनिमित्त ही ललकारना समझो उचित।
सोच ले हम तुझ सदृश, शत्रु बहुत भगा चुके हैं ॥
कौन खग नीज नीड़ को उजड़ते देखे दृगों से ?
सान्ध्य पल विश्राम, निशा-नींद बहुत भुला चुके हैं ॥
मृषा विपण्ण अभावों की अव्यक्त गिरा।
उपहृत उपसेवी सम, हम समय बहुत उलार चुके हैं ॥
वह कल परातर गया, परापर कारण पराभूत थे।
वायसराति बने, क्यों बने ? असह्य भार उतार चुके हैं।
कनक विहंग विख्यात भारत, कनकावरण में विभाति यश।
धुंध में घिरे रहे हम, धुंध अब कथार चुके हैं ॥
चाह है विश्राम की, बेशक ! तुझे चलना पड़ेगा।
छाँह है तुझको मिली, बेशक ! तुझे-जलना पड़ेगा ॥
हैं मिला अपार बल, संघर्ष से डरता है क्यों ?
है मिली दो बाजूएँ, भूख से मरता है क्यों ?
है मिली अनन्त बुद्धि, आह नर भरता है क्यों ?
हर समस्या की युति हैं, फिक्र नर ! करता है क्यों ?
सर्व सुख तुझको मिला, बेशक ! दुख सहना पड़ेगा ?
चाह है विश्राम की, बेशक, ! तुझे चलना पड़ेगा ॥
मील कोसों चल लिये, फिर भी न है मंजिल, मकाँ,
लोग वो किधर गये ? दिखता न कदमों का निशां ॥
यह न समझो हारकर, पीछे तुझे है लौट आना,
हर विफलता से है लड़ना, यदि तुझे मंजिल है पाना ॥
जीत लो बाजी बेशक, जगत में छलना पड़ेगा।
चाह है विश्राम की, बेशक ! तुझे चलना पड़ेगा ॥

शूलों का जाल या वन-वीथिका विकराल हो।
भूधर कीशृंखला, सागर नदी या ताल हो।
फूल,शूल-भेद को, सच्चा पथिक न मानता,
सुपथ और कुपथ को, सच्चा पथिक पहिचानता।
फिर भी कभी ठोकर खा, गिर उठकर संभलना पड़ेगा।
चाह है विश्राम की, बेशक ! तुझे चलना पड़ेगा॥
यह सलोनी धरा, रे ! तुझको मिली उपहार में,
जन्म हीरे सा अमोल, क्यों मिला संसार में ?
विधाता ने दो चरण, दो हस्त तुझको क्यों दिया ?
खोल ग्रन्थि अर्थ समझो, व्यर्थ जीवन क्यों किया ?
चाह है मरने की, बेशक ! तुझे जीना पड़ेगा।
चाह है विश्राम की बेशक ! तुझे चलना पड़ेगा॥
कर्म की वसुधा सोने चाँदियों से तोल देगी।
कर्ममयी जिन्दगी में, सुख शान्ति घोल देगी।
मनुज हो, न निराश हो, तुझे हँस जीना पड़ेगा,
पीयूष के प्यासे पथिक हो, जहर भी पीना पड़ेगा।
अधर पे मुस्कान, बेशक ! अश्रु में गलना पड़ेगा।
चाह है विश्राम की, बेशक ! तुझे चलना पड़ेगा॥
जिन्दगी कीड़ों की, जो व्यर्थ आते व्यर्थ जाते,
कुछ ऐसे भी गये; जिनकी ध्वनित अब भी बातें।
वे अमर बातें प्रदर्शित, मूक बन पथ करे प्रतिपल,
चलकर उन राह पर, निकरों, फंसों मत, राह-दलदल।
दलदल में भी फंसो, बेशक ! तुझे रलना पड़ेगा।
चाह है विश्राम की बेशक ! तुझे चलना पड़ेगा॥
इस भाँति जन समूह को, सम्बोधित किया अति गर्व से।
ज्यों जन का मन प्रफुल्लित, सदा उत्सव पर्व से॥

अतः विरामदायिनी निशा ने नृप को, छल लिया।
और स्वप्नों ने धरापति को, तुरत अविकल किया।।
पुनः निशावसान की चर्चा चली प्रकृति में।
ज्यों मनुज जुड़ा रहा है, सर्वदा निज रीति में।।
कर्त्तव्य-पथ जब हो अधूरा, प्रकृति भी बहला सके ना।
ज्यों नदियां हैं विकल, जबतक सागर पा सके ना।।
चीर व देवदारू की वृक्षावली भी मौन हैं।
पूछती-प्रकृति मध्य, वह उदास कौन हैं ?
प्रकृति में तादात्म्य ही, सर्वस्व सुखाधार है।
किन्तु पागल वासनायुत, क्यों न वह सुकुमार है ?
प्रकृति परी के पास है कौन जो उलझा नहीं ?
व्यथित हृदय का कौन अवगुंठन, जो सुलझा नहीं ?
प्रकृति आँचल में अहा ! कैसा यह विराग है !
हृदय रोगी कौन है ? जिसमें नहीं अनुराग है।।
कौन है ? अनजान बन व्यथित है सुखधाम में।
है कोई ? कह दे उसे रे ! प्रकृति में अभिराम है।।
अचानक प्रभात की छवि, गगन में छाने लगी।
और नृप के दृगों में, सिमट कर आने लगी।।
प्रकृति को नियमानुसार, रचा सृष्टिकार है।
होत भिसाहर प्रकृति में, मचा हाहाकार है।।
तन्मय छवि-चिन्तन में, अशोक अति अनुरक्त थे।
एकायन मर्न से निरख कर, कल्पना में व्यस्त थे।।
खग वृंद प्रातः काल उठ, रवि को जगाने से लगे।
शशि और तारे प्रभहन, उदास हो जाने लगे।।
निस्तब्धता हो भंग, कोलाहल प्रकृति में मच गया।
अशोक के मन में, अहा ! तत्काल वह पल बस गया।।
आज उन्मादी प्रकृति हृद्-देश में संचित रही।
आज तक मन-भावना क्यों सत्य से वंचित रही ?

लुम्बिनी वन आज यौवन में लुभाने सा लगा।
नेत्र-पट में शक्र कानन, विहसता आने लगा॥
आज कलरव से गगन, गूंजित हुआ परिधान में।
लालिमा प्राची दिशा में, मुदित निज अभिमान में॥
इधर मलयानिल मधुर, मद में प्रवाहित हो चला।
पियूषभानु उधर मानो, पियूष मद में खो चला।
निशि वासर मध्य का, यह पल आशावान है
स्वर्ग इससे तुच्छ है, प्रातः अतः धनवान है॥
इस प्रकार अशोक का मन, सत्य पर वारित हुआ।
और उसका सत्यचित्त, सत्य पर आधारित हुआ॥
पर्वतों का करुण-जल, निर्झर बन कल-कल करे।
क्यों शलभ पावस-सांध्य दीप पे, जल-जल मरे ?
प्रेम-सत्यानन्द पर ही, सृष्टि संचालित हुई।
प्रकृति में तादात्म्य से, सभ्यता पालित हुई।
पिक पपीहा विरह में मधु-विरह गीत सुना रहे।
शेष विहंग मिलन के, रसमय धुन सुना रहे॥
कोयल की कूक से, वन उपवन गूंजित तथा।
वीणा के तार से, हो सप्त स्वर उदित यथा॥
मधुर वाणी से मनुज का, विश्व में कल्याण होता।
यथा वेणु-ध्वनि-पर, बलिदान मृग का प्राण होता॥
अम्बुधि अन्तर्ध्वनि से विकल, अम्बु-मन झिलमिल उठा।
अशोक का हृदयतल, प्रसून सदृश अति खिल उठा॥
जब से मानव प्रकृति से, दूर जाकर बस गया।
तभी से मानव चिन्ता, दर्द में जा फंस गया॥
नेत्र की तुष्टि प्रकृति की, गोद में होती सदा।
प्रकृति ही नर-क्षोभ और मलीनता धोती सदा॥

जब भी अशान्ति में मन, बेचैन होकर कुढ़ता।
तब प्रकृति की गोद को, विश्रांति हेतु ढूढता॥
कौन है जग में जिसे, प्रकृति विमुख से चैन है ?
भौतिक-सुख में डूबते, नर के विलापी नैन हैं॥
अशोक पुनि आगे चले, जहँ वाटिका थी सज रही।
नीलकण्ठ, शिखण्डी की, धुन थी तहँ बज रही॥
अगणित रंगों में सुशोभित पादपों पै फूल थे।
अलकापुरी सा दृश्य था,शोभित सरोवर-कूल थे॥
दूर से लक्षित कुछ नयनाभिरामी दृश्य थे।
सागान, शीशम, चीर व देवदार के कुछ वृक्ष थे॥
पयोधर के मध्य पद्मप्रियेश की क्रीड़ा लखो।
मानो नवोढा प्रिय मिलन पर केलि करती है, अहो !
जलकुण्ड और सरोवरों को देख मोहित हो गये।
सुधा-सर में शारदा-वाहक, भ्रमित बोहित हुए॥
परिजन समेत पर्वतों की ओर बढ़ आगे गये।
हो गई संध्या, सजीले स्वप्न से आने लगे॥
दिवा निशा मध्य बेला, संध्या सजने लगी।
कल्पना की सारिका की, नुपुर-धुन बजने लगी॥
भाग्य-कर्म का जब भी, सांझ सम सम्मिलन होगा।
सत्य सुख-निधान जग में, कष्ट का उन्मूलन होगा॥
तत्काल कुमुद-कुल-वल्लभ व्योम तल पे आ गया।
तुरत पवि के पास ही, चहुँ ओर बादल छा गया॥
चार चारु कला लिये, लुक छुप कलाधर रम गया।
कलापति मानों कलाधर की जटा पे थम गया॥
कर्त्तार के कर्तृत्व पर वरुणेश कुछ कहने लगे।
परिजन भी कल्पना में साथ थे बहने लगे॥

कलाधर उड्गन समेत जलाशयों में मिल रहे ।
मानो उतरकर धरा पे, जलकुण्ड में थे खिल रहे ॥
प्रकृति के परिवेश में, परिश्रान्त जन-मन मुदित है ।
हो अचेतन पान कर, कादम्बरी ज्यों मुहित है ॥
सत्वर अशोक प्रकृति का गुणगान फिर करने लगे ।
मुदित हो तत्काल, सुख के उदधि में तरने लगे ॥
उस मनोरम प्रान्त में, मानव विरुद्ध न भाव थे ।
पावन अकलुषित प्रेमयुक्त सद्भावना युत चाव थे ॥
गिरिराज की शोभा निरख, कुछ और वे आगे गये ।
थे हिम और हिमांशु के दृग में दृश्य नये-नये ॥
कलापिनी में कलामुखि आभा, छिटककर छा गई ।
हिम में हिमांशु हिमांशु में हिम, भ्रांति मन में आ गई ॥
श्वेताम्बर परिधान में, कल्लोल करती निर्झरी ।
करती वीणा-तार पर, झंकार मनु कादम्बरी ॥
छविपूर्ण छायेदार वृक्षों की घनी शोहित छटा ।
वरुणात्मजा का पानकर, लो ! डगमगा धावित घटा !
हरित मखमल तुल्य दुर्वा, अशोक-मन पे छा गया ।
लेटकर विश्राम का सुविचार, मन में आ गया ॥
द्रुत धावकर परिजन सभी, बिस्तर डसाने आ गये ।
कोशम्बिनी दमक गर्जकर, नील नभ पे छा गये ॥
तन्द्रालयस्थ उन्मेषित दृग पे, मद सा छाने लगे ।
मानो मधुपगण मद्य पी, मद में अलसाने लगे ॥
"ठहरो !" कहा अशोक ने, यह कार्य अति अनर्थ है ।
है प्रकृति की कोमल शय्या, बिस्तर सब व्यर्थ हैं ॥
बरबस आकर्षित करे, यह दृश्य नयनाभिराम है ।
लेट-दुर्वा पैर लगा, यह प्रकृति या सुरधाम है ॥
देव निर्मित मगध का, वह राजगृह विस्मृत हुआ ।
प्रकृति में विश्राम का आनन्द, तब जागृत हुआ ॥

गलबाहें किये पर्वत संग, आ पयोधर झुक गया।
पयोद पे पर्वत, पर्वत पे पयोधर रुक गया॥
प्रकृति की पाकर छटा मोहित नयन यों रुक गये।
मानो खड़े द्रुम-वर्ग, कुछ चलते हुए से झुक गये॥
अशोक का मन मुदित था, हृदय अति नादित हुआ।
मनहु तटिनी तरंग पे, भीमता द्रुम कम्पित हुआ॥
अद्भुत सौन्दर्य का रसपान कर बहने लगे।
प्रकृति-माया के शिकंजों में जकड़ फंसने लगे॥
चीर चारु चंचल चपला ने जलद चमका दिया।
अशोक मन यों क्षुब्ध ज्यों क्षुब्ध चकवा है हुआ॥
उधर जलधर उमड़कर उदधि बरसाने लगा।
इधर अशोक बन-कुट में, छुप कुछ पाने लगा॥
पावस—पयोधर प्रीत लेकर, पारसी सावमान संग।
आ गया ले इन्द्रधनुप, डारता अनुराग रंग॥
चातक की विह्वलता, उच्छ्वाह स्वाति के लिये।
चकोर की विह्वलता ज्यों चन्द्र विभाति के लिये॥
गिरि शृंग निज जिह्वा पसारे निगलने को मेघमाल।
मेघ निज बाहें पसारे चूमने को शृंग-भाल॥
प्रेम विह्वल हो पयोधर, बलखाती लटों में छुप गया।
शैल परियां मेघ के उर में छुपी, नभ रुठ गया॥
इस तरह निहार नृप मुग्ध मति सा खो गये।
लौट रात्रि-स्वप्न में, वे दृश्य अपने हो गये॥
सत्य आवागमन से, जगत-मेले न कम होंगे।
प्रकृति शाश्वत अमर मदिरा, बेहाल न हम होंगे॥
इस तरह आनन्द से, बहु काल कवलित हो गये।
और पूनम की निशा, आई अंधेरे खो गये॥

आज पूनम की छटा, सवारती अपनी धरा।
वारिद विहीन नीलनभ, सितारों से है भरा॥
खद्योत उड्गन खेलते, इक धरा एक अनन्त में।
मदपान कर यौवन समेटे सुषमा दिग् दिगन्त में॥
इस भांति कपिलवस्तु उरवेला दर्शन कर लिया।
और वापस जाने पर पिघल आँसू भर लिया॥
चल पड़ा उदास मन, विह्वल बन्धन में छला।
देव पाटन नगर का, निर्माण कर वापस चला॥
चारुमति रह वहाँ धम्म संचालन करे।
बुद्ध के निर्दिष्ट सदाचार का पालन करे॥
प्रजा हित निहित सदा, धम्म की तल्लीनता में।
प्रजा दुख निहित सदा, दम्भ नैतिकहीनता में॥
चले विदा ले प्रजा प्रकृति से, अनिच्छुक होकर प्रजेश।
शोक निमग्न विकल मन मोहित, चक्षुवारि थामा प्रदेश॥
नेत्राँभस थामे नृदेव, नृपकंद-नयन चल पड़े नीरस।
कुशीनारा की ओर निस्क्रमन, हो विक्षुब्ध बेसुध विवश॥
लक्ष्य की अभिपूर्ति पर आह्लादपूर्ण गमन किया।
विनय-प्रवीण नृप झुक, जड़ चेतन को नमन किया॥
किधौं मयूर की गति, कुंजर वा, हंस गति समान।
स्वाभाविक गति आकर्षक ज्यों, सिंह चल रहा वक्ष तान॥
कुशीनगर में पहुँचते ही, जन समूह उमड़ पड़ा।
मानो सुकृत के चहुँओर, सर्व सुख घुमड़ पड़ा॥
पहुँचे समाधि समीप अभिनन्दन सभी स्वीकारते।
"बुद्धं शरणं गच्छामि" जन-झुंड संघ पुकारते॥
कुशीनगर का पावन रजकण उमंड़ समाधि पर बिखर पड़ा।
मनु सत्य अहिंसा-दया-पुहुप के पराग-कण हो निखर पड़ा॥
आभासित प्रतिध्वनित प्रतिध्वनि, ज्ञान-दीप से तम जागृत।
उपदेशों की मधुर सुगन्धि, विघटित मन पे आधारित॥

मनोद्विग्न मानव हृदेश पर, व्यथित भावोद्वेलित तरंग।
क्यों न अशोक शोकमय हो, जब जीवन अन्तर्द्वन्द्व संग ॥
बुद्ध-साधना पूर्ण और परिक्लान्त काल का अन्तिम पल।
निर्वाण काल का मधुमय पल, करता पल-पल जीवन निर्मल ॥
कुशीनारा का यह मधु दर्शन, अशोक का जीवन-दर्शन।
बुद्ध-आशाओं के प्रति, अशोक का यह आकर्षण ॥
चिन्तन का आधार मनोरम, मानवता का भाव अमर।
काँटों में अमियधार, प्रस्तर में रसमय श्रोत लहर ॥
जीवन संघर्षों का अन्तिम पल, जीवन का है-सुदर्पण।
संदेशों की प्रतिध्वनियों से, अति गूंजित हो उठा गगन ॥
भौतिकता का अन्त व अभौतिकता का श्री गणेश।
जीवन मृत्यु का यह संगर, महामनुज का सद् प्रदेश ॥
अशोक शोक में डूबा था, कि दिव्य ज्योति दृग में आई।
सत्य किरण की चमक अचानक, नेत्र-देश में झट पाई ॥
सत्य धारण कर हृदय में, मगध वापस चल पड़ा'।
'कर्म मान बड़ा' कहा-"कौन कहता फल बड़ा ?"
चौरासी हजार विहार, चैत्य स्तूप अस्सी पाँच सौ।
बसाकर श्री नगर में, मठ बनवाया पाँच सौ ॥
सौराष्ट्र में नग-नदी से सिंचाई पर बल दिया।
सुदर्शन सर-नहर द्वारा कृषि-विकास अविरल किया।
इस भाँति जन-हित निमित्त जीवन दान कर सफल रहा।
संघर्ष पथ पर झोंक निज को, व्यस्त कल, सच, कल रहा ॥

पंचम सर्ग

निर्वाण

अशोक निज अन्तिम समय में दुखी और अशांत था ।
कर्मनिय जीवन प्रवाहित, सर्वथा परिक्लान्त था ॥
और विह्वल कर दिया, असन्धिमित्रा का निधन ।
अग्नि उर में भर दिया, तिष्यरक्षिता का मिलन ॥
बोधिवृक्ष विनाश से ही, तिस्सरक्खा गई जल ।
या कुणाल-विवाद से, अशोक का जीवन विकल ॥
जलौघ और कुणाल की, भारी समस्या आ खड़ी ।
कौन कहता भावना, कर्त्तव्य से होती बड़ी ?
उग्रपंथी राज्य में, विद्रोह भड़काने लगे ।
शान्ति में सोई शक्ति-द्वार, खड़काने लगे ॥
कौन दुर्बलता परख, है लाभ उठाता नहीं ?
दुर्जनों को कभी भी, सद्भाव क्यों भाता नहीं ?
शान्ति-अर्चक की दशा पर, उमड़ दुःख ढाने लगे ।
बिदके हुए गीदड़ न जाने सिर उठाने क्यों लगे ?
कुणाल की दुर्गति, और तिस्सरक्खा का कुकर्म ।
वही दृश्य दशरथ समक्ष, कैकई का ज्यों अधर्म ॥
कुणाल और जलौघ को सत्ता थमाकर खो गया ।
सत्य का एक अंश जीवन, सत्य का ही हो गया ॥
किन्तु वह मानव नहीं, जो कष्ट हँस सहता नहीं ।
न्याय-पथ पर चल, पराये हेतु जी मरता नहीं ॥
कष्ट जोड़े हाथ आता, समर्थवानों के समक्ष ।
झुक जाता कर्म चरणों के, देख विशाल वक्ष ॥
अशोक का 'अ' लुप्त हो, शोक शब्द समा गया ।
और जीवन में अचानक, अति अँधेरा छा गया ॥

सौन्दर्य सौरभ लुटाकर, अब फूल क्या ? वह धूल है।
सब कुछ लुटाकर होश में, आना बड़ी ही भूल है ॥
लुटा कर सब कोष, नृप विशोक मोहित छल गया।
दान व उपदान का, सारा विधान निष्फल भया ॥
न भाज्य है, भाजक नहीं, न भागफल, न शेष है।
शून्य ही है शून्य का पूरक, अन्त सविशेष है ॥
अतः अंतिम समय में, नृप रहा निज हाथ मल।
दिया भिक्षुक कर में, जब दक्षिणा अर्द्धान्न फल ॥
सुखद जीवन विगत होकर, दुःख का आना निरन्तर।
क्रमसः वन चक्र सा, अथ से इति तक परिवर्तन ॥
प्रकृति पुरुष सम्बंध अब, चिरंतन चलता रहेगा।
कली बन प्रसून, सुरभि पराग संग फलता रहेगा ॥
निर्माण व निर्वाण का विधान, हर युग में अटल।
उत्थान में लगता समय, पर पतन लेता कुछ ही पल ॥
किन्तु उत्साहित पुरुष दुख से कभी डरता नहीं।
सत्य अहिंसा का पुजारी शोक में मरता नहीं ॥
निज पुत्र का सुन रुदन क्रंदन गर्व हो कहने लगा।
"जन्म मृत्यु समान स्वागत योग्य" समझाने लगा ॥
मृत्यु वीरों को न ढूढ़े, ढूंढ़ते वीरवर सदा।
मृत्यु तो विराम गृह, जाते थकित हो सर्वदा ॥
पुनर्जन्म विधान प्राणी-मात्र को पुनि-पुनि मिला।
पवन-पय ज्यों दूषित हो, निर्मल दूषित का सिलसिला ॥
'मोह' ही जीवन-जगत का अरि रहा है सर्वदा।
कारण यही है मृत्यु-भय, अनुभूति होती सर्वथा ॥
मृत्यु शक्तिहीन व भयहीन अतीव पवित्र है।
त्रसित है मानव यहाँ क्यों ? यही एक विचित्र है ॥
शान्ति व विश्राम का बन दूत आती है यहां।
पार्थिव देह विसर्जिता, देही जाती है कहाँ ?

जड़-चेतन की पृथकता से मनुज बेचैन है।
प्रकृति वैधानिक गति से, क्यों उदासी नैन हैं ?
हे पुत्र ! निज कर्तव्य-पथ पर, चल कभी रुकना नहीं।
निज शत्रु की ललकार के सम्मुख कभी झुकना नहीं ॥
विलव वन दुष्काल में अधीर तुच्छ विलाप है।
कदापि सृष्टि विधान के भी, विमुख होना पाप है ॥
सर्व सुखाय सर्व हिताय कर्म स्वर्ग समान है।
इह लोक व उह लोक हेतु कर्म प्रकृति-विधान है ॥
पिता की सुन बात तब महेन्द्र अति विह्वल हुआ।
और मनोभाव दृढ़ संकल्प पे अटल हुआ ॥
दुष्परिस्थिति में मनुज, दुष्पाप करता है कदा।
अज्ञानतावश ही मनुज, दुष्कर्म करता है सदा ॥
सुकृति प्राणीमात्र की, धरती गगन में गूंजती।
और अच्छे बोल को, मानव-धरा बसं पूजती ॥
होता कलंकित धरा पे नर, मृत्यु किसके हाथ में।
जड़-चेतन के मिस, आती नियम के साथ में ॥
नियति से खा चोट, मानव खेलता संघर्ष से।
सुजन उद्यमशील मानवं, झेलता आदर्श में ॥
और उसकी शक्ति द्विगुणित हो, सहन करने लगी।
हर दर्द और अशान्ति में, धीरज धर रहने लगी ॥
भाग्य की रचना करता, मनुज निज कर्त्तव्य से।
बढ़ता रहा मानव सदा, निज साधना एकलव्य से ॥
हे तात ! आज मनुष्य क्यों श्रम कर अति निर्धन पड़ा ?
और दुखित उदास हो, दृग में रुदन क्रन्दन बढ़ा ॥
कुछ लोग बिन श्रम-दान के ही सुखी वैभव युक्त हैं।
भोग और विलास पर जीवित, बंधन मुक्त हैं ॥

हे तनय ! बिन निज कर्म के, सुख-भोग में अनुरक्त हैं।
भौतिक सुखों को भोग कर भी, वे दुखी संतप्त हैं॥
भाग्य के आधार पर सुख की करे जो कल्पना।
रेत की दीवार सा सुख-भोग जीवन जल्पना॥
कर्म बिन सुख भोग में, अनुभव न सत्यानंद का।
तोपहीन जीवन सदा, होता आत्मिक बंध का॥
न्याय व अधिकार खोकर जीवित रहना पाप है।
कापुरुष सा कर्म बिन, जीवन मरण अभिशाप है॥
पुरुषत्व से ही वीर निज कर्त्तव्य में सज्जित हुआ।
खोकर निज अधिकार ही, मानव सदा लज्जित हुआ॥
सुहृदयता प्राप्त कर, दुख दर्द में मानव पले।
और सीमा से अधिक, विनम्र बन मानव छले॥
सर्वदा शान्ति दया के, अर्चकों पे घात होता।
और जगोपकारियों पर ही, कुठाराघात होता॥
क्या निज सर्वस्व खोकर, मान बढ़ता है कभी ?
नहीं, वह निज हेतु अपना वक्ष गढ़ता है सही॥
सब कुछ लुटा कर अन्त में, जल उठा पश्चाताप-अनल।
फिर देखता नर राख की ढेरी, हुआ विगलित मन॥
बिन विचारे कार्य करने का, यही परिणाम होता।
दानकर उपकार में वह, अन्त में बदनाम होता॥
आवश्यकता, आपत्ति में मानव पूजित सर्वदा।
ज्यों पितृ पक्ष में, द्विज, काक पूजित सर्वथा॥
मानव ही मानव को आज खाना चाहता।
दुष्कर्म करके स्वर्ग तक, सीढ़ी बनाना चाहता॥
इस भांति मानव निज पथ से भ्रष्ट हो कुछ ढूंढता।
पूछ लो वह दर्द-पारावार में क्यों डूबता ?
दहक उठ कर आग ने बैकुण्ठ लोक जला दिया।
और मानव को उठाकर नरक में बसा दिया॥

स्वप्न अन्तरग्नि में पड़ अनवरत जलते रहे।
और निज अभिमान में, मानव सदा छलते रहे॥
क्या यहाँ मानव अरे ! निज को नहीं पहचानता ?
वैर- भावों में खो, सोना लहु से छानता॥
इस तरह निरुपाय व निश्चेष्ट, होता अन्त में।
ज्यों पतनारा पतित हो, मल दबाये दन्त में॥
इस बीच दामिनी दमक, मानो महल जला दिया।
अथवा उछल प्रलयेश ने बरछी उठा हल' दिया॥
शाक्यकुलप्रिया महादेवी मगधरानी अहा !
पति शोक निवारिणी सहगामिनी ने क्या कहा ?
क्या विप्रणाश को नहीं, पहिचान प्रिय प्राणेश की ?
क्या क्रूर कील की कामना, अनुचित नहीं राजेश की ?
इस भाँति शोकाकुल हुई, विलाप कर रोने लगी।
नयनाभिरामी काजलों की कालिमा धोने लगी॥
कुंतल बिखेर वियोगिनी सम अधीर होकर ढह पड़ी।
और अन्तिम चरण में, कुछ सान्त्वना दे, कह पड़ी॥
हे आर्य ! मगधपते ! हे कुशलेश ! मगध प्रियेश हे !
सहवासिनी, सहगामिनी पत्नी हूं आदेश दें॥
अनायास निष्प्रभ मुख नत मर्त्य भू को कोसती।
कहने लगी वर्मा विमोहित, मृत्यु किस को जोहती ?
राज-भवन पर टिटिहरी की अशुभ ध्वनि गूंजती।
राक्षसिन यमदूती बन क्यों विह्वल हो कूदती ?
हाय ! विधि ! क्यों मगध का सुहाग संकट में पड़ा ?
वाम शृंग कहा फड़कता-वो देखो यम खड़ा॥
हाय, प्रिय ! रवि-चांद चल कल आज और संग कल गया।
शशांक ने ज्योत्सना उगल कितनी अमा को निगल गया॥

निखिल सृष्टि सुसुप्त, मगध विशाल शोकातुर हुआ।
क्या महि पर दर्द, आधि विस्तृण लोकातुर हुआ ?
वामा पति पर हो गर्वित, तद्धेतु सब कुछ झेलती।
ललक भर जयनी बन, संग सुख-दुख में खेलती ॥
कर समर्पण पति बिन, जाती अबला दांव हार।
पतिहीन नारी का जगत में, जीने का क्या अधिकार ?
अतिशय विकल मन अविश्रांत दुर्दंभ अकेला मत करो।
रसोद्रेक आलिंगन कर, क्षुधित अंक में ले भरो ॥
सहधर्मिणी, कुलपोषिणी पति के लिए जीवित, अहो।
क्या हे प्रिय ! तज कर अकेले, चले जाओगे, कहो ?
हाथ थामे, कर प्रतिज्ञा, संग निभाने के लिए।
लूट स्वर्गीय ज्योति स्वयं, मुझको जलाने के लिए ॥
तड़पना ही धर्म अबला का विधाता ने दिया।
वन प्रवञ्चक असंशय मर्त्यामर्त्य अतः किया ॥
तृष्णा, क्षुधा, नश्वरता व वेदना उपहार है।
हे मर्त्य लोक ! तू क्यों टिका है ? विधाता धिक्कार है ॥
सुनकर विलापी बचन फिर अशोक समझाने लगे।
अश्रु के संग्रहित मोती, विहस लौटाने लगे ॥
हे मगधधात्री ! राजगन्धा ! सुसंगिनी ! हे चिरलते !
यह आवेशित उद्गार, मर्मोदघाट ! माया से हते !
सुरलोक मर्त्यलोक मध्य अन्तरमयी यह क्रिया है।
सुरलोक है आनन्द दाता, मृत्युलोक में व्यथा है ॥
परिवर्तन ही जीवन की अन्तिम परिभाषा होती है।
इस कारण मानव जीवन में बहुरंगी आशा होती है ॥
जड़ चेतन में परिवर्तन, मानव में, नित नव आशा भरती।
अमर धाम में देव-शक्ति मिट्टी पर प्यासी क्यों मरती ?
एकसार, निष्कर्म, विलासी, विकास रहित देवों का घर।
मर्त्यलोक मकान, कर्म, विश्राम, ज्ञान, तप का है घर ॥

नर नर से नारायण होता, नारायण नर रूप धरे।
धरती पर आकर देखा, नारायण थे मोहित खड़े ॥
अतः मृत्यु-शोक पर तनिक घबराते नहीं।
जाना न होता यदि हमें फिर पुनि पुनि आते नहीं ॥
सुरलोक मर्त्यलोक की गाथा प्रफुल्लित है खिली।
देह देही विमुक्त हो, अमरता अमरता से मिली ॥
देकर मधुर यों सान्त्वना, अशोक-मन मलीन हुआ।
ज्यों भानु विहीन निशि में, पद्म आभाहीन हुआ ॥
सुनकर प्रभाव पूर्ण बातें, रानी विवश हो चुप हुई।
पोंछ नेत्रों के आंसू नृप-वदन-प्रेम विवश हुई ॥
अन्तर्निहित नृप-दर्द का, अनुभव किया मन में।
छुपाये चक्षु में आंसू, पीड़ा गुप्त धड़कन में ॥
अन्तर्निहित दर्द नीरद थाम मुस्कयाता,
बहाता अश्रु वसुधा पे, परन्तु दान कहलाता।
घुल जाते सब काजल, नीला नभ चमक जाता।
संभाला सुधिज्ञ वसुधा ने, न तो हुताशन धमक जाता ॥
खाली स्वयं होकर के, उदधि से भीख यह कैसा!
लुटा कर जा रहा बादल, संत-जीवन ही ऐसा ॥
इस भाँति विदिशा सुकुमारी, बिलख कर रोती गई।
पति की दुर्दभ दशा पर, खिन्न अति होती गई ॥
किन्तु शक्ति के दृगों में ऊँच-नीच समान है।
मृत्यु ही जीवन जगत में, निश्चित निष्पक्ष प्रमाण है ॥
इस तरह रानी व्यथित, मोह से तन खो रही।
महल ही क्या राज्य की, सारी प्रजा थी रो रही ॥
पद्मावती भी महादेवी संग विह्वल रो पड़ी।
ऐसी विपत्ति और कब होगी? यथा भी अब पड़ी ॥

पद्मावती की अश्रु-धारा से हुई गंगा विकल।
रवि-किरण मलीनता ने, पद्म-आभा ली निगल॥
बोधिवृक्ष किया हरा जिसने, वही क्यों छल गया।
जिसने जलाया सत्य दीपक, वही उसमें जल गया॥
जो सदा निर्माण में था व्यस्त, वह निर्वाण में।
प्राण में था जो प्रजा के, आज वह निज प्राण में॥
वह दग्ध अकाल कष्ट, बिल्कुल सहा जाता न था।
वह अन्तर्व्याप्त दुःख, खुलकर कहा जाता न था॥
हो अचेत स्वप्न अकिंचन, उदधि सा आने लगे।
और मन में भँवर गहरे, जटिल बन छाने लगे॥
दरबार, नृप-परिवार शोक निमग्न हो रोते गये।
धरा पावन-अश्रु से, बिलख कर धोते गये॥
तत्काल अश्रु पोंछकर, संघमित्रा पास आई।
विभिन्न वर्तालाप से, अन्तिम पल कुछ आस आई॥
निकट जाकर पूछने कुछ, हो गई उद्यत तभी।
क्या पिता का पुनः दर्शन, हो सकेगा अब कभी?
लोभ मानव का अरि, दुर्बल, बनाता सर्वदा।
क्षोभ का कारण इच्छा, बांधती जो सर्वथा॥
हे तात! हे सिरमौर्य, मौर्यवंश-शिरोमणि, अहो!
क्या लोभ-हीन प्राणी जगत में दिखता कोई? कहो!
निर्वाण, मोक्ष-साधना भी लोभ का कारण सदा।
हर थल माया की दीप्ति, दिखती है यदा कदा॥
क्या मोक्ष प्राप्ति में, मनुज का लोभ निहित है नहीं?
निष्काम व फलहीन मानव कर्म करता क्या कभी?
विहस पुष्प सदृश-हृदय-सम्राट समझाने लगे।
संघमित्रा के मन में, भाव उमड़ाने लगे॥

अलौकिक, इहलोक-संचयहीन इच्छाएँ प्रबल।
लोभ हीन मोक्ष कहलाती सदा दुर्लभ सबल॥
सत्यमय सद्ज्ञान से ही, षट्रिपुओं का विलय।
एक ही दिवसेश से ही, ज्यों प्रकाशित नभ-निलय॥
निज हृदय में झाँकना ही, दुर्गुणों का अन्त है।
पर दोष सदा निहारना, दुर्वृत जन का पंथ है॥
सप्त त्याग संवारना, सद्भावना, सद्ज्ञान होगा।
लोभ स्वार्थ मद मोह से, मनुज का अवसान होगा॥
संघ मित्रा का मनोबल, द्विगुणित परिमल हुआ।
और अन्तर्ज्ञान उठ, बुद्ध सदृश निश्चल हुआ॥
पुनः नारी जगत पर, कुछ पूछने को दृढ़ हुई।
और भीगे नयन थे, उदास ज्यों दिन में कुई॥
नारी जीवन बन्धनमय, पुरुष की है किंकरी।
पिण्ड दान काल में हो, ज्यों उपेक्षित विकरी॥
क्यों सेवा दान कर, नारी प्रताड़ित है यहाँ?
क्या न समाधिकार पर, नारीत्व की रक्षा यहाँ?
अशोक मन्द कम्पित स्वरों में, बात समझाने लगे।
रुंधते, रुकते स्वरों में, शब्द बरसाने लगे॥
संक्षिप्त शब्दों में अतिशय भावों का समाधान।
कहे पद्, ज्यों शांत-जल में, उठ पड़ा हो लघु उफान॥
नारी अतीत का गौरव है, नारी पूज्या उपकारिणी।
सुसन्तति-जननी, अनुराग-साधिका, पूजा की अधिकारिणी॥
सच्ची ममता की उपासना, नारी हृदय की भाषा।
नारी सृष्टि उत्कर्ष-साधिका, नारी जग की परिभाषा॥
जिस समाज में नारी का, सम्मान नहीं होता है।
वह समाज सृष्टि विधान का, यथार्थ सुख खोता है॥
नारी प्रेम-बन्धन सृष्टि में, मनु की विकल साधना है॥

सृष्टि काल के प्रथम पुष्प की, सुरभि, शक्ति आराधना है ॥
नारी धरा बीज नरबन्धन, सन्तति द्रुम हरित है ।
पुष्प-कर्मफल, सुरभि-यश, पल्लव धर्म सरिस है ॥
नारी पर ही पुरुष-सुख निर्भर करता सर्वदा ।
कुनारी से दुख की अनुभूति होती सर्वथा ॥
अतः सुपुत्री सदा निज धर्म पर चलते रहो ।
दुख आने पर भी सुखानुभूति में पलते रहो ॥
नारी दुखसहन व दुख-वहन का आधार है ।
हृदय मूक विशाल स्नेहिल प्रेम-पारावार है ॥
गृह-कर्म संचालिनी मनमोहिनी ममतामयी ।
प्रेम-शिक्षा दायिनी, स्नेह में सरितामयी ॥
और नारी हृदय में, समाहित सदा अपनत्व होता ।
नारीत्व की रक्षा हर नारी का का कर्त्तव्य होता ॥
धर्म्म-पथ पर अग्रसर करती सदा सुकर्म जो ।
वह समाज अमर रहेगा, चाहे विपत्ति अति गर्म हो ॥
सबने कतिपत प्रश्न से, रिक्त झोली भर लिया ।
जाकर समीप महीप के, सर पे आशीष कर लिया ॥
अतः अन्तिम पल अतीव दुःसह जिज्ञासा प्रधान ।
आशीष देवन हेतु एकत्रित बाल बुड्ढे जवान ॥
तदन्तर वह प्रान्त शोक निमग्न उदधि तरंग में ।
डूबते जाते सभी कुणाल सम्प्रति संग में ॥
उदधि-शोक-तरंग में बहकर बहा जाता न था ।
असह्य विपद-शोक किसी से सहा जाता न था ॥
आज समक्ष अशोक धूमिल, मृतक शय्या पर पड़ा ।
होगा कष्ट कहाँ जग में, इस दुर्दिन से बड़ा ॥

आज मगध विशाल जड चेतन अंधेरे में खडे ।
दुर्भाग्य के कारण सभी, आपत्ति-घेरे में पड़े ॥
विपण्णचेता शोकमय पुनि दृश्य वे फिरने लगे ।
सब के दृगों से अश्रु-कण, सिसकते गिरने लगे ॥
शनैः शनैः विकास के सदुपाय सारे ढह गये ।
यथा शोकाकुल प्रजा के, अश्रु सारे बह गये ॥
सभी धर्मों के पुजारी, शांति मंत्र पढते गये ।
और इधर अशोक मृत्यु समीप ही बढते गये ॥
अचानक ही महादेवी-मुख से विचित्र चीत्कार निकली ।
वैधव्य सीने से यथा शमशीर चीर पार निकली ॥
अचानक ही स्वांस, रक्त-प्रवाह पल में रुक गये ।
और पद्‌म सदृश नयन विह्वल नीचे झुक गये ।
देखते ही देखते सब कुछ धरा से लुट गया ।
मौर्य वंश-भाग्यकलश छूट कर से फुट गया ॥
अचानक सुगन्ध मन्द पवन विकल हो थम गया ।
और वीर युवा लहु हिम-नद सदृश रुक जम गया ॥
पुनः प्रबल प्रलय प्रभंजक, प्रेतसम प्रवाहित हुआ ।
मनहुं यम प्रतिशोध को भी पवन उत्साहित हुआ ॥
नील नभ में नक्षत्रों का टूटना, शशि-अश्रु जल ।
और दामिनी की दमक-गर्जन, अनाहत सम विकल ॥
हुआ वज्रपात मगध राज्य जलकर ढह गया ।
कर्म-धर्म अशोक का केवल धरा पे रह गया ॥
व्योम के नक्षत्र आहत हो जब ढहने लगे ।
तिमिर नयनों से घुल काजल तब बहने लगे ॥
नृप-उपवन के श्रृंगारिक पुहुप भी झड़ने लगे ।
राजमहल पे उदासी के कहर ढहने लगे ॥

अशोक-चक्र हर-काल हर-पल सर्वदा चलता रहेगा।
और कीर्ति-मशाल युग-युग तक सदा जलता रहेगा॥
प्रजा पालक, प्रजा सेवक यों चला संसार से।
ज्यों किसी साकार का हो, विलय निराकार में॥
चला न जाने कहाँ डूबता, अतल अकूल सागर में?
अचिर मिश्रित हो तरंगिणी नीर यथा सागर से॥
महाशून्य निरभ्र गगन में, दयासिक्त मृदु ज्योत।
चला अरुण आभा-तरंग अर्पित कर पार्थिव लोथ॥
घनावरण-आवृत, अद्वैत धाम में सुखद मिलन हैं।
उस अनन्त अपार अम्बर में, बंध प्रणयालिंगन में॥
सत्य, अहिंसा, दया त्याग की मूर्ति कहाँ जाती है?
जब भी हो अन्याय धरा पे, पुनि-पुनि आ जाती है॥
जब तक चन्द्र, सूर्य, तारे, ग्रह, पृथ्वी व अम्बर है।
तब तक अशोक इस विश्व-शृंग पर दीप्त दीप अमर है॥
महा सुख की चोटी पर सुर भोग जहाँ करते हैं।
वहीं अशोक चिन्तन-मुद्रा में प्रतिपल चुप रहते हैं॥
उस आनन्द धाम में भी जनहित के चिन्तन में खोया।
भग्नावशेष आशाओं पर, कर दृष्टिपात लगता रोया॥
नर के इन व्यथित तृषित भीषण, हाहाकारों में क्रन्दन।
कंटकित अंग, तन शिथिल और व्यग्राधरों पे भी कम्पन॥
धर्म-सिन्धु में संघर्षों के प्रतिफल फेन उठेगा।
तब अशोक का मृदुल वक्ष, फेनाश्रय कूल बनेगा॥
जब दुस्सह दुरन्त, दुर्दभ कष्ट जन पे छायेगा।
तब अशोक विकल होकर द्रुत धरा पे आयेगा॥
दनुजता जब भी सिसक कर रो पड़ेगी, हनन होगा।
जगन्नियन्ता, जीवलोक पे, अशोक का जनन होगा॥

धम्म जब आँसू थामे, रो पड़े संसार में।
तब अशोक बुड़ा देगा विश्व, पारावार में॥
जब धम्म उजड़ चुकेगा मानवीय व्यवहार में।
तब अशोक थाम लेगा डूबते मझधार में॥
सभी धर्मों के निचोड़ें अर्क, जब जन-पान होगा।
विश्व में सद्भावना सद्ज्ञान का सम्मान होगा॥
अशोक का चिन्तन जग-कल्याण का आधार होगा।
धम्म बिनु पुष्पित धरा पे विश्व का संहार होगा॥
धम्म जनहित और नैतिकता चिन्तन- मूल था।
सुकृत-विकास-पंथ यह, मनुज के अनुकूल था॥
यदि उस दुष्काल में, अशोक-मन न मसीह होता।
मगध अपनी क्रूरता पर, भस्म होकर ढीह होता॥
प्रयत्न निहित परिश्रम से, पवन श्रम-जल छीनता।
पीपल-द्रुम-पल्लव राम मानव-मन झीमता॥
तब पाहन भी पयोधर सम पय निज ढारता।
कुलिस सदृश कंटक, कोमल कली सा वारता॥
तब श्रम भी आँच भी, तुहिन सा लगने लगे।
और मानव-भाग्य भी उदीप्त हो जगने लगे॥
इस तरह यह मर्त्य भी, सुखद सुभग अमर्त्य होता!
ईश विरचित यह धरा, सुरधाम का अपवर्ग होता॥
देव-कन्याएँ सबों का तुरन्त ही नर-भेष होता।
अभिलषित मोहित परियों की धरा मधु देश होता॥
दो एकसर अमरलोक, भ्रम पथ-भ्रम सोचतीं।
मर्त्य और अमर्त्य के ही भेद में मन कोसती॥
किन्तु वह सुरलोक कर्म विहीन पदोन्नति नहीं।
अतुल यह वसुंधा में गति, स्वर्ग में है गति नहीं।
जीव ब्रह्म मिलन से, स्यानन्द मिलता सर्वथा।

प्रान अपान संय्योग से, ज्यों योग शोभित सर्वदा ॥
पार्थिव-दहन के संग ही, जलकर इच्छाओं का शमन् ।
देह-देही पृथकता, करती बुराई का दमन ॥
हर युग, हर प्रांत में, हर का उद्देश्य अपवर्ग होता ।
अपस्मार-पीड़ित जग का, लक्ष्य अर्जित स्वर्ग होता ॥
अराति संग संघर्षरत, प्रेम ही स्वीकार होता ।
इस जगत में परस्पर, सहयोग सद्व्यवहार होता ॥
उपगुप्त जब इस मृत्यु का अधिकार देखा सामने ।
आत्मा रहित प्राणेश-शव, कर में चला वह थामने ॥
मिट्टी सदृश उस देह की, गाथा अति विचित्र हैं ।
जीवन मिट्टी और क्या ? सुकर्म धर्म पवित्र है ॥
स्त्री केशर, पुंकेशर ले पराग फलो निमित्त ।
प्रफुल्लित प्रसून, उड़ा पराग, सुरभि संग अली विजित ॥
नित्य झड़ते पुष्प वृन्तों से उड़ते झड़ पराग ।
सूख जाती पंखुड़ियाँ, उजड़ जाते प्रणय-राग ॥
जड़ उन्मत डालियाँ चेतने सभी हो रहे जड़ ।
वन-उपवन के शृंगार सजकर जाते उजड़ ॥
जगत में निर्माण का है अन्त, निर्दय नाश ही ।
हर कर्म का हैं अन्त, जड़ चेतन में अवकाश ही ॥
घात प्रत्याघात से, निर्माण और विनाश है ।
मायामयी इस सृष्टि पर, फेंका अलौकिक पाश है ॥
अहंकार मनुज-जीवन का, सदा ही अरि रहा ।
और अच्छे कर्म व सुविचार सर्वोपरि रहा ॥
और क्या संचित रहता, समझ परे सिद्ध है ?
सर्वदा सम प्रजेश का व्यवहार, जगत प्रसिद्ध हैं ॥
हे जगत पति ! जगत पालक ! विचित्र तेरी सृष्टि है ।
तेरी अलौकिक कृति पर पड़ती कदापि न दृष्टि है ॥

इस बीच संज्ञाहीन रानी बेसुध हो गिर पड़ी।
मनहुं चिर अभिलाष पर आक्रोस विद्युत गिर पड़ी।
सजीव व निर्जिव का यह मिलन अति स्वप्निल रहा।
मोहवश आकृष्ट जग माया से ज्यों मिल रहा॥
हायप्रिय ! हा कन्त ! ! स्वर से गगन गुंजित हो गया।
नील विवर में अचानक, कहाँ वह नृप खो गया ?
उधर ईश्वर जीव का संगम मनोरम हो रहा।
जड़ से चेतन इधर, लिपट कर दृग धो रहा॥
सुकृत का लेखा उधर राजेश का सर्वेश को।
इधर विकल मोह-माया से ठगा सविशेष यों॥
मोह माया से विरत नृपेश प्रभु-समक्ष खड़े।
मोह बन्धन में सिमट, अचेत मर्त्य प्राणी पड़े॥
जग से बिछुड़ कर जीवब्रह्म का मिलन पवित्र है।
रुदन क्रन्दन मोहवश अपरिहार्य विचित्र है॥
दुख-शोक-विकल तुरन्त शयनागार खाली हो गया।
सिमट कर लज्जित होकर उदधि प्याली हो गया॥
और क्या हैं शेष चिल्लाना खड़े इस पार से ?
लिखने को क्या रहा ? जब लुट गया संसार से॥
किन्तु पश्चात्ताप क्या ? जब जग किसी का है नहीं।
रुदन क्या ? हँस रोकर जाना सभी को है वहीं॥
जगत का बाजार कुछ भी हो कभी खाली न होगा।
हम नहीं होंगे भले, क्या बाग का माली न होगा ?
रो भले दो किन्तु जग, आनन्द पूर्ण निधान है !
आगमन-निगमन अरे ! इस सृष्टि का विधान है॥
वृत्त आर्यावर्त में, जब धर्म पर संकट पड़ा।
अशोक उस दुष्काल में, आता धरा पे सर्वदा॥

एक दाता जग याचक, रिक्त कब दरबार है ।
सर्व शक्त्याधीन ही, चलता सदा संसार है ॥
भाग्य की खा ठोकरें, दुर्वाद अति अनर्थ है ।
कार्यशील मनुज हेतु, भाग्य रेखा व्यर्थ है ॥
अब थक कर मम लेखनी, निज पंथ पर चलती नहीं ।
अशोक-घृत बिन, भावना की वर्तिका जलती नहीं ॥
ले विदा हम सोच यह, अशोक सम स्वराज्य हो ।
जन-मानस दुखदायिनी, सब भावना परित्याज्य हो ॥
एतादृशेव भावनाओं का यदि उत्कर्ष होगा ।
विश्व शिरोमणि स्वर्ग सम, यह भव्य भारत वर्ष होगा ।
किन्तु अपने नाविकों पर ही भरोसा कर चलें ॥
स्वयं भी सहयोग देकर सुख शांति में पलें ॥
यही अन्तिम कामना करके, विदा लेकर चला ।
"और, और." की आदत से, जग में मानव छला ॥



बरमेश्वर पाण्डेय् 'चन्द्रात्रेय'

जन्म : टोलेफखरूराय
प्रखण्ड : बैरिया
जिला : बलिया (उ० प्र०)
पेशा : अध्यापक, शिक्षा-निदेशालय,
दिल्ली प्रशासन, दिल्ली

प्रकाशित पुस्तकें :

1. अशोक का चिन्तन (खण्ड-काव्य)
2. परिदेविता (कविता-संग्रह)

प्रकाश्य पुस्तकें :

1. कुणाल का पुरुषत्व
2. माध्वी (उपन्यास)
3. आवाज बन्द मत करो (उपन्यास)
4. Age And Image of Sanskrit Literature

उ पा स ना . प्र का श न

165-D, कमला नगर, दिल्ली-7

B-28/15, दुर्गा कुण्ड, वाराणसी-5